9301919

मुनाः— व्याधिम वारिक भा, जांक गांखन आ॰, वांचां मिक ४५, जोकगांखन ५०, दिवमां मिक ०, जांक गांखन । ८० वांचा। व्यवधिम वार्षिक ५०॥०, जांक गांखन आ॰ वांचा প্রতি খণ্ড। প বিজ্ঞাপন প্রকাশের মূল্যঃ—প্রতি পুংক্তি, প্রথম, দ্বিতীয় ও তৃতীয় বার ১০, চতুর্থ ও ততোধিকবার ১০আনা। ইংরেজী প্রতি পুংক্তি। তথানা।

क्रिक खार्ग

किनिकां जाः - २१ व दिलाष्ठे, - व्रक्ति विवाद, मन ১२৮० मान हे । ५३ जून ५५१७ मान।

३१ मश्था

विड्वां भन्।

-:01c:-

श्रामि क्यांत नाउका।

मःक्षृ याञ्च, कानिः नाद्देखिति, हिना-ज्ञांकांत २२,१० ७ ७) न१ तम्यम यदात पाकादन ७ ७७ नः (ভानानाथ मूर्थाशाधारिय प्रांक्त कित्न श्रेशा। युला। । जान। यां ज जां क यां जन । जाना

निम निथिज शरीिकाज जेयथ 'लिकाजा २४ नः वागाशुक्त जी युक वाव ननी ज्य (नत वाहिए उ ভদেশ্বরে উক্ত বাবুর ডিস্পেশ্বতে थाथवा।

3। न्त्रिति क्रांग् कत। এই गर्शियथ অভिमा उ देलांदेर्ग व्याधित विद्रम्य देशकाती प्रवर् हेरा - दाता অনেক আরোগ্য লাভ করিয়াছে। মূল্য॥०० शाकि १/३०

२। धीशकालीन शानिश प्रवा। श्रिशंख भीकांत्रक, जाग्ने वृष्टिककांत्रक उ পেটের উপদ্রব नाम कतिद्व। मूला॥%० थार्किः %

७। बृह्द हिम मार्गत जिन। धरे छेदक्के टिजन গাত্রে ব্যবহারে বায়ু পিত রোগ সকল বিশেষ উপ-কার লাভ করিবে। যথাঃ—মাথা ঘোরা, বেদনা, भितः भी डा, भा ब जाला, भतीत ज्यमञ्चा, श्राकण्यः **ठ**ःक शांत पर्का, मिख्यकत की पंजा डेपाताथान, वांत्र উक्तांत इंड्यांनि यूना > शांकिः d

8। বাভরাজ ভৈল ইহাতে বিবিধ বাভ যথা कागडात्ल, विद्वत्ल, कर्नकर्त्व, श्रंड शा व्यवन, वा टित्न थता यङ দিনের হউক না কেন নিশ্চয়ই আ-द्वांगा इहेरव मृला ५० भाकिः ०

ए। ठर्च (बागानि रिज्न। गंबन, मान कूनकिन, तक कुछ, श्रीष्ट्रा, ट्रोक, शांता वांता वां लांगिङ वि-क्रु बहेशा परकत छेशत ठकांकांत म,ला ५० शांकिश्ब

७। कर्ग भी ए। रेजन। इश्वां कर्णत বিবিধ পীড়া, কাণের ভিত্র ঘা, ও রস বা পুঁজ शञ्न, वा बिंधत्र जा मिष जारितां गा वहेरव मृला ॥० शांकिः /30

१। भारीत (भाषक वर्षका। यह शिष्ट्र शीषा, বহুমুত্র, শ্বেত প্রদর, জ্রী লোকের বাধক পুরতন কালী -आज शिव्य, लला, जर्मा, प्रस्ता उ श्रूक शिव धक একটি রোগের ভিন্ন ২ অনুপান দিয়া সেবন করিলে ख्रांश आद्यां श इहत्व म, ला ३० शां किः

৮। गृहिनी अञ्चल आंगां भारत् विका। ইशां छ बुजन वा शूर्तांजन आंगांभंग, शिटित विमना, कांग--प्रांलि, उ श्रिमी शीषांत देशनाम इरेदा। मृला प जे

२। देशमः आ दांग अ घात आ जि छे छ म मलम ॥ পারাসংশ্লিফ রহিত) নানা বিধ গরামর অন্যান্য श। यथ। जूजन, शूर्तांजन शा, नाली शा वार्ल शीषांत य या विलिया थादक, शांतांत्या, वित्यंव छः बूजन या जिल्म अंदित मध्या जादियां मा इहेर्य। मृला॥० जे/১० वम वि. त्व ध डि, पन गिव, पन, पम, पम, THE INDIAN EVIDENCE ACT 1872.

KISHORI LAL SARKAR M. A. B. L.

Price Rs. 3

This is decidedly the best edition of the Indian Evidence Act that we have yet seen. Babu Kissoree Lal Sircar has spared no pains to remove the difficulties which stand the unintiated readers of the Act in the face. He has made the work acceptable to the public generally. -Law Observer,

To be had at the Amrita Bazar Putrika Office and Thacker Spink & Co's Library.

> यदभात्र (लान (काम्मानी लिशिएड यूलधन २०००० विका श्रीकांत होका, खां ज जिल्मा ममा होका।

১৮৬७। ১० আইনারুদারে, উক্ত কোম্পানী श्रां ज अ (ब्राइक के बिक्स के कि स्थारिक । कि निभानि मः श्रांत्रत व्याज्यात्र धाई (य, दोका कड्ज निया छ। श्राञ्च कदा । ध्वर । धे दिल्ला माध-নের জন্য বন্য করা করা অবশ্যক তাহা কর্বা

धि जम्बाः मर्विमाधात्रवाक ख्वां कत्रा यो हेट ए ए इ कि नित्र मुन्ध नित्र मुन्ध नित्र जार्भ श्रद्ध क्रिट है। क्रिक्स क्राभागी क्रिक्स मारमज मरधा थि। यज जारभ लहेरज हेल्हा করেন তাহা আমান লিখিত গতের দারা नां म निवामानि मह खंड कित्रवन। (कांन्यां-नीत कार्या मश्रद्ध (य (कि विषय (कि जानि-তে ইচ্ছা করেন তিনি यभात लোন কোলা-नीत कार्गालट्य जागात नकडे जाशवा जे कांन्यानीत थाक (मत्निष्णः एदतकहेत बियुक् इहेट शादिद्य ।

> ত্রীকালীপ্রস সেন (मटक हे ति लाग का न्लानी

जीन जीयुक महाताका विताक वर्षमान প্রদেশাধিপতি বাহাদ্ররের

ञाञ्च भाषि ७ अ जा मुखां ७

व्यो ह ज्य कि दर्भा तरमन कि विता द जात जौश दर्व वर्षान्य अववानग्र

38७ नर लागात हिर्शूत त्रां कि का जनाती

वालाथाना, कलिकाजा।

छिशदांक छेवधां लाय वाय त्रांत वार्थां वा-जना गटज्य मर्स्थाकाय त्यादग्र गानाविष व्यक्तिग क्षेत्रम, टेडल, इंड उ शांहनामि स्लंड मूरला म-

र्मिषा প্राप्त कार्य कार्य व्याप्त विन् शयुक्त विकिৎमक मर्सना छथाय छशिष्ट् थाकिया वावन्दा कित्रा अवर्गान लान करतन।

कि विक्नीता) भी छात्र मर्श्वधा এই कछेकत शीषा यनि थक वश्मरतत छान्धिक काल गरशा ममूख् इ इर्गा थारक छात्रा इरल निक्त्रार व्याद्वां शा श्रा थहे शीषा थक वर्मद्वत व्यक्ति कांत्लित इहेल हेश किकिश व्याशिक कांल मिवानह निः भिष जारिया शा इया ७३ अथ कर्यक मित्रम मिवरनरे जुत, फिर्वला श्रेज्ि डेशक्त मकल् मृतीक्छ इय। এই বাাধি কর্তৃक मर्बन। यে পুৰুষত্বের श्नि श्रेशा थारक ভाशा अशा मित्र कि काश আরোগ্য হয়।

धक किंदित मूला २ दीका छाक माणन ।0 ञ्च त्र चून शीव हिका।

(সর্ব্ধ প্রাকার জীরোগের মহেগ্রধ।)

इश (मवन कहिल्ल तक उ एवड श्रमत, कछ तक वांधक, त्रांगं वक्षां धवर काना श्रान्व कार्यार गर्ड व्यांव हेनामि मर्स श्रेकांत खीरताम निक्षहर व्याद्वां शा ध्रा ध्रे कलानिक निम्न विकि। मर्ख শ্রীরের রক্ত পারিস্কার করিয়া জ্রায়্র সমস্ত शीषा निःदंश आद्रांशा कद्रा।

धक (की होत मूला २ होक।। डाक मालन

टिल्यका तज्ञावली।

स्र्विमिक आंयुर्सिमीय हिकिश्माशंस्। उयध প্রােগ ও প্রস্তুত করিবার প্রণালী বিস্তারিত क्रिंश लिथि जार्छ। इंश পরিবৃদ্ধি ज्ञार्था इंश जि ठक्रकं, त्रामक्रियांगि उभाक्ष्यत প্রভাত বিবিধ धोन्ड इहेट नामार्थकात रिङ्ग, घुड, धार्च्छाडिङ छेन्ध उ ञातिष्ठे ञानगानि म त्रिविष्ठे कतिया मून उ वक ভাষায় অনুবাদ সহিত্যু দ্ৰিত হইয়া ২ খণ্ডে প্ৰাকাশিত इहेशोरह ; প্রতিখণ্ডের মূল্য ৩ টাকা ডাকমাশুল 10 व्याना। व्यावनाक इहेल व्याभात निकि मूला भाषा इलिइ थाश्र इइरवन।

वीविद्यां पलाल मिन खश्च कवितां ज ; कर्माभाक ।

यएमा धतिवात मत्रक्षम।

आंगता विलां ड इहेट अ जि छेखम छेखम मरमा धतियांत मत् अंग व्यर्था विला जिला हिला, चूडा, क्रेल, गरे, वड़िंग इंडां कि जिंड जूलंड मृःला विकशादि पोगपानि कतियाहि। योश्त প্রয়োজন হইবে তি.न প লিখিত ঠিকানায় তত্ত করিলে সবিশেষ অবগত ९ ज शाति दवन।

> जि, जन, विशंग जवर काः ०२ न ९ (जन इ जिम अञ्चर्यात मिक्न वन्द्रकत (पाकान। কলিকাতা

जाना।

विख्वांशन।

लाल्टवङ्गित भिष् धवर किरि (इणिश्वाश्रीशिक विकिध्मक। 3 नः जाशत मात्रकूलात (तांष, कलिकांषा। (लायानम्ह (ब्रनाखर्य (ब्राक्टेन दिन व्र किन मना, रथ) खलां छेठात वाका ३२ सिंगिल शूर्व महम्ब

शुखक

२८ लिलिं, मटमङ शेखक -- ১० রবিনির ক্যাম্ফর

এখানে जन्यांना मकल छोकांत (इंगि-खिशां थिक छेषध जून छ गूला शांख्या यां य ध्वर मकल श्रकांत्र शीषांत्र वावश्रा (प्रवश् यांश।

> श्रक्त वसू नाहेक। खीयुक खर्फान क्यांत द्रांत প্ৰণীত 1

युला ऽ धक छोक! एक माखन ८० जिन

किनकां छ। ४४ नः कल्लि छि, छे (किनिः माइ (बद्रीटि, ८२९ (खे. अ (द्रांटि, ७ भाग वाकांत्र कत (शिंदम श्रांश्वा।

वङ्गविद्या-अण्डिशामक छेशनग्राम। बङ्बाङ्गांत्र की हे छोनट्शं यद्भ, १०० नः कदनङ की हे कार्गिन लाई (बिहिट्ड शां उर्श गांत्र। मूला ३।० डांक गालल ८० वना।

लर्ज लिए त्व इवि।

चूउन गवर्गत (জनादिलत अिंड डे॰क्से लियो-প্রাফ ছবি আমার নিকট বিক্য়ার্থে প্রস্তুত আছে यूला / । जाक माखल / । ০০৬, চিতপুর রোড কলিকাতা।

विषातिका नाथ तात्र।

3110

इइंटि मगछ (इंगि अभारिश अयथ जानाइयाहि। छाइलिউमन इंड्यांनि जागात अश्ख প্रञ्ज रहेरा। निम्न निधि भूखक अ जनगनग खेराथ अथादन शांख्या यांग्र।

আমার প্রণীত

মায় ডাকমাশুল হোমিওপ্যাথি তিকিংসা বিজ্ঞান

3100 उस थए, उस मर्था। २য় मश्था 310 হোমিওপ্যাথি ভৈষজ্বতত ३म मर्थाः 30/0

অর্পরোগের মহৌষধ (त्रांशीता आश्रेन आश्रेन लक्कर्न शार्था हेर्दन

टोक द्वारगंत मरशेयश

হোমিওপ্যাথিক মেডিসন চেফ

खलां छेठां त २० मिनि वांका ३० 30 लिलि वोक्स

এই বাক্স এক খানি পুত্তক থাকিবে যাহা ছারা धाई किर्तिन व्याधि उ देशंत नाना श्रीकांत श्रीतवर्डीं उ निजांख मतल जांयात्र निथिज।

> व्यविश्वातिलाल ভाष्ठां ए ७८ नर् कर्व अयो निम्धी ।

त्ताभ विदल्य वावञ् ।

मुला-

देखीत शूख ठरूर्थ शर्म। প্রতি আট পেজি ফরমার युला

छोकांकत ठांन वस (नव ৫८ नः इंटियाला ৫ न १ ल्लां जाता जाता ता जाता ।

ডাক্তার ফকির চাঁদ বামুর ক্বত অব্যর্থ ঔষধ मकल।

58 फिट्नि यदशा আরোগ্য লাভ হয়

१ मित्न जारतां गा २। एक यक् व वृक्षि लां छ इया।

0। छेला छेठा (उप विश्व विश्व इत । नां छी गंत्र श्र

8। एखन्ना । मिया गांज जारताता इत।

৫। (थाम পांठण। २ मिटन प्यांतांम इয়।

७। ठ्रेन्टका। धटक मिटनई

१। शिल जुत मां जित

৮। युक्त शिला। मन्न मित्न

2। यूर्था मनम। शहा या शिह इस मिटन শুকিয়ে যায়

बूरे शाति र जदक्षां ९ আরাম হয়।

१)। পুরাতন ও মালেরিয়া জ্ব। সাত দিনে আরাম হয়।

30। अशि योना वा अकुश ज्ल इया

38। थिहिनी। मांज निरम जाल इस

३४। वगन। उदक्तनंद ज्ञान इग्र

3७। मान। जिन नित्न जान को

३१। आंश वाज। এक मिल्ल जान इस।

১৮। পুরাতন ধাতু চালা। সাত দিনে ভাল र्य ।

र्हिर्थानात ७८ न ए जाङ्गातानात शाउरा यात्र। धङिस्त्र वात्र वात्रक तिर्गत वार्ग छेयथ व्याटि मूला (वांच निंनंत भाग लिथा আছে।

डाकात किक का कान वस (नव। एनः मङ्गिजात ताज वाजी। কলিক। ত।।

निम्निशिक (त्रार्शित व्यव (धोक मर्जत अयथ जामात किंद्रे शांख्या यांत्र । या 8 त्यां छ। छ। काश ।

२ श्वांन (मन्। ७ वगन। छेमती । श्रीक्ष बर्शामां ७ जाश मान्ता व প্রস্কালা। ৮ शভুকরা। ৯ বহুমূত্র 30 मिन्यो धरल। 33 इंग्लिनि काली। 32 जा-মাশয় ३७ এक कथाटल गांथा वाथा। 38 थिटिंब ३७ नग्रवा। ३७ छारमङ्। ३१ वां शु-१५ मुर्थत द्वर्गम। १२ तक शिव।

জ্ঞিকির চাবস্থ দেব।

৫८ न १ राष्ट्रे (थाला। ৫ नः मভावाङात ताङ्गवाहि কলিকাতা

बीयुक्त वांतू (इमहन्त वत्नांशाय क्व व्यान्धा कानन कावा श्रकालिं इरेशार्छ। यूना ३ वक्षिका जाक गोत्रल

ताशयख ११ नः डिवानी हतन मट्डित लिन, कार्गानिश्लाइखाति, ७० नश्काल ही है, (मांग शंकाण यञ्ज, ज्वांनीशूत। ववर वम, वल, मिलक ववर कार वत पाकान ०१ न (माश्रात्ला त्ला थार्था

> कर्र शाल। इं जिशंम मूलक नां छेक।

कलिकां जा, कलि कि है कार्निः लाई खातिः िश्रीम ७७ रकारः, विष्टू ठाष्ट्रात्रं सिंहे, मध्य छ याख्र शृंखकालायः, ठेनठानिया, याष्ट्रा वाजात खी है, न १ ७१, वाल वा है (श्रम, हिनावाजात, शक् हैं) नार्थत (माकारन ও जाशतांशत श्वारन धवर मेष् (ए नः ९२ शफ् शांत शक्त, शांग्र शुखकालत व्यथना व्यागात निक्र विक्रार्थ প্रস্তুত व्याह्य गुला ऽ धक होका; ডाक माण्ल ०० इइ व्याना माज।

बिश्यम नाथ मिल।

नर एक, गेफ भात (तांफ, क्रांलिकांछ।। नग-निन्न नाहिक। युला > एक छोका, एक-माण्ल /० ७० जाना। উक्तर शादन विक्यार्थ शिष्ठ व्यादा।

ठिस्रोम (जलात जलात जलाज निज्ज शिर्मात জগত প্রাণিদ্ধ তীর্থ শন্ত নাথ চন্দ্র নাথ আন্তানার मर्का करोती गालिक जी युक्त किटमात्रवन गाइख कर्त्रक यथानिय्या आधि भोजात नामा हाता नियुक आम মেজার সীতাকুও নিবাণী মৃত অনুপরাম ঘোষের र्व तांगकां ख शांच छेशांच्छ कार्या मकल जाशन थाश्च क्रम डां जूमादि मन्नापन किति जन। जिन कान श्रकात विशाक आतृ इरेश छेशश्रिड ,कार्धा मन्त्रांष्ट्र व्यापात्र इहेल कार्य मकल मन्त्रांष्ट्र -१२। तक थिए। पूरे भारत तक छे । त्र कि किश कि छ छ छ आ छोना मित्त छोत महत्तत कार्य निवूक मीठांक्छ निवामी गृज वाग्रलाल (प्रश्रूब त्रांकार्य (न महत्त्र नांग প্রোক্ত আম মোক্তার नागांश लिथा इस गांव। ताजहात्मत षांता कान कार्या कथन उ मन्ना पन कर्तान इस नाई धवर इरव उ না। রামকান্ত ঘোষ মোজারের মৃত্যু হওয়াতে वाग (गंकात नागा निधिक कागक नि ताक उन्म মহরের হত্তে পড়িয়াছে ৷ অভএব প্রকাশ করিভেছি विषिण গ্ৰণ্মেণ্ট এলাকাধিন দেওয়ানি ফৌজদারি करोग कल्लिक्नेति त्रांष मिन इंज्योि विभाग व्याना व्यानियन कार्या निर्दाष्ट्र मण्यापन कति एक वाग भाका व नागा षांतां तां जाठन्य (न गर्दात्र (य क्यां वां ति अया रहे-शां ছिल ভাश ति इंड कता इरेल। উक्त ता का उन्ह कर्त्रक ऐक व्याखाना ममसीय कार्या मकन व्याश उ व्यागि जोशा जो ह। সীতাকুও প্ৰকাশক

>२४७ दाक्षाना ३२ वे देजार्छ

छि। किरमातियन भाइख मीजाकुल, हारेजांग।

मकः यदान मुना था थि

बीयुक वां वू यहिड जिन ति छ या ती

" " वमल कूमात (घाष तामशूत (वात्रा लिया किया किया

" তারক চন্দ্র নাগ পিরিজপুর, বরিশাল ১০

" " शृब्ह या । । ।

" " जीवताम मार्मा वड़ या (जाड़श छ आमाम ।

" " शाविन्म छ । प्रव मिदल छ " यर्ङ्ख ठल यिव छ्शली

" भट्टम्हञ्च मानाम होधूती यश्यानमिश

" जिलान एखा जिल्ह (यिषिनी भूत

চৌধুরী মহেজনাথ পাল গড় কোতাইর কাছারি ১.

" उद्यम्हञ्च वत्नाभभाशाश्च शंड डा डाश्नभूत द

" भेश्रत छला ताश्र (यथली श्रञ्ज

" " ताम विश्वति वस् श्वा

" " इति अठल (घाष क्रिज्ञा

" जक्त क्रात यूर्था भाषा या वाकू ज़ा " उदिशक्त नाथ मिन जाका

" अधिको চরণ আদিত্য এলাহাৰাদ

" 'देवक्रेनाथ न्यां। नश्रम्फक बीर्डे " " জগত চতৰ মুখোপাধ্যায় দেওঘর

æ

210

n

অমৃত বাজার পত্রিকা।

मन २२४० माल २११ देशार्छ, इङ्ग्लिजियात ।

ञगक्रल इहेट गक्र (लि १ १ भन्न।

किছू मिन इडेल ঢाका প্রাকাশে এই বিবরণটী প্রকাশিত হয়। ঢাকার অন্তর্গত মাণিকগঞ্জ থানায় क्रेक জन मव इरनम्भक्टेर्त्रत वामार्ड জरनक करनरचे-ल वाम कतिछ। कत्निष्ठिवल छादात वामाय आदात ত এবং যখন তাহার হাতে সরকারি কোন কাজ এশাহ্ত না থাকিত, তখন সাবকাশ মত সৰ ইনজ্পো-द्वतंत काज कतिछ। এই कथा ताष्ट्रे इछग्रांग कर्ड्-शकौरामिरभात कर्न् भागत इस जवर जरे निमिज मन इनटम्भक्केत पिछि इन। यानिकारिक्षत का है इनटम्भ-छेत জानिতেन (य, कत्निष्ठियल मय इन्एल्लेक्ट्रेत्तत वामात्र থাকিত এবং তাহার কাজ করিত কিন্ত তিনি ইহা (य्रा) य जाश्वाद्य अहे जहे जन लिंग किया कर्याणाती দুণ্ডিত হইয়াছেন, গ্বর্থেটের বোধ হয় এমন এক জন ইংরাজ কি ফিরিঙ্গি কর্মচারী নাই যিনি এই রূপ অপরাধে অহোরহ অপরাধী না হইয়া থাকেন। আমর। জানি এক জন ৰিখ্যাত মাজিষ্ট্রেট তাঁহার জী ও আত্মীয় স্বজনকে সরবিসে পত্র লিখিতেন। ফল वागता এ मयस्य अधिक छर्क ना कतिया छीर्छ रहेर्ड আমরা যে এক খানি পত্র পাইয়াছি তাহা আমরা निम्न প্রকাশ করিলাম। পত্র প্রেরক এরূপ জর্জরিত इरेब्राष्ट्रन (य, जिनि जार्थन नाम मिय्रा नाम मिय्रा र्थन ইশানি প্রকাশ করিতে বলিয়াছেন, কিন্তু তাহার ইহাতে विপদ इইতে পারে এই নিমিত্ত আমরা তাহার নাম প্রকাশ করিলাম নাঃ—

'অামরা আশাম বিভাগের অন্তর্ভ ত হইয়া প্রকৃত "আশামী" इइंशा উठिशाणि। আশা, जतमा, उ॰मार প্রভৃতি সুরমা নদীর জলে নিকেপ করতঃ আমাদিগকে मर्साङाङाद नित्रक इहेश थाकिए इहेशाएए। अध्यादित प्रःथ किश्वात ज्ञान नाई, युवता प्रहे (लन ना। मन कथा छुठे कित्रिया छेड़ाईया किल्लिन। একটী ছঃখ-বিবরণ আপনাকে না জানাইয়া থাকিতে তুকুম করিলেন তোমাদের ৫০।৫০ টাকা জরিমানা পারিলাম না। অত্তর্যহ পূর্বক পত্রিকা পাথে স্থান थानान कतित्व वाधि इहेव।

''रैयना" नामक आया जामता शीठ घत पतिज জমিদার বাস করি। আখাদের অবস্থার বিষয় বিশেষ বলা অনাবশাক যেহেতুক জীহটের জমিদার-গণের অবস্থা আপনারা অনবগত নহেন। আমাদের প্রগণার পূর্ব, পশ্চিম এবং দক্ষিণ দিকে ত্রিপুর। व्याहाएत ० ती वाथ। পाहाए। এই পाहाए जरमत यशास्त्रिक स्थानहेकू व्यागारमंत्र क्यामात्री; स्रुक्तांश জমিদারী যে কত দূর বিস্তৃত मহজেই অञ্ভূত

इइरिडए । শে দিন হুজুরের প্রেরিত, দেড় দেড় হাত লয়া भारता श्राचा थाश्र इहेलाम ; " (एः कः সাহেবের হুকুম। চিফ কমিশনার সাহেব গারোদ श्रिमणीत्न आमिद्वन। ३३ मिन मस्या (अभामिशंदक পাথরিয়া পাহাড়ের পশ্চিম সীমা হইতে চরগুলা পাহাড়ের পূর্ব দীমা পর্যান্ত দমুদয় স্থানে পাহাডে 30 হাত প্রস্তু ও ৭ হস্ত পরিমাণ বাস্থা (প্রায়সড়ক) প্রস্তুত করিয়া দিতে হইবে (প্রায় এক দিনের পথ श्री ख)।" मन्भाषक मश्रभाश विलिट कि, श्रवश्रीना खला পार्र कतिया आभारमत পूर्ठि मार्ছत थान উড़िया शाल, ভাবিয়া অন্থির হইলাম। কিন্ত কি করি না कितिया (তা চারা নাই। অগ্রাগ্রা সকলে একত্রিত इरेशा यथा माधा धात्र कर्ज कतिशा जारिकाञ्ज আচরণে বাধ্য হইলাম।

কিন্তু এত করিয়াও নিন্তার পাইলাম না। लाज (केणात्मत मव इत्निल्लाक्टेंत वांचू तांछ। पिथिएं व्यामिशा अव ना मञ्जूत कतिएलन। कि किति श्रेनतांश

थाकिवात, विमिवात, थाইवात, छहेवात জना আরো १ थाना घत এवर थात्र २०० लंड (नाटकत तमम रेजग्रात ताथिए इहेल। আবার রায়তগণের খাজনায় মহকুপ দিয়া ও কত বাপু, বাছ। বলিয়া এवर खना लाकटक दिननिक ॥० खाना ५० खाना (वडन দিয়া কাজ করাইয়া ছিলাম। কিন্তু সাহেব আদি-(लन ना। क्या পाशए রাজার উপর জঙ্গল উঠিল। तमन পाहिल, घत ভाङ्गिल, এवर मद्भर আমাদের ভবিষ্যত আশা শুকাইল।

মহাশয়! ১৬।১৭ ঘর রায়তের মালিক জমিদার দারা नेष्म গুৰুত্র বিষয় কত সহজে ও অক্লেশে সম্পন इहेट পाরে তাহা मकल्वि বুঝিতে পারিতেছেন। यिनि (मर्भात व्यक्तिक गोलिक जाशांत किছूरे कतिए इहेल ना। পाथातिया পाहाएउत गालिक २००।२६० कूलित অधिপতি পথল मार्चिर्क किছू कितिए इरेल गा। এই इंडिंगां फिरां किरे मंत कि ति इरेल,

এই রূপে আমরা যে কত্য স্থবিচারের ফল ভোগে পরিভৃপ্ত আছি, বলিয়া শেষ করা যায় না। তবে এবিষয়ের আরো একটা মাত্র উদাহরণ প্রদর্শন वर्-

নামা আদিল আমাদের প্রত্যেককে ৫০ জনা করিয়া অমজলের বিষয় নহে। শরীরে যত দিন এরপ ভাবে কুলির আবশ্যক, পশ্চাৎ অবগত হইলাম। স্বয়ং এক জন যাইয়া সাহেবকে কুলি সমজাইয়া দিলাম, কিন্ত প্রদৃষ্ট বশতঃ গারোদের ছেড কনেষ্টবল वावुत मदन माकाः मिलाय ना। এই जानताद जिनि जायामित छेशत तिरिशिष्टं कतिरलन " এक जन उ कूलि (मृहे नाहे।" आभारमत जलव हहेल। (एः कः मार्व मगीर्थ छेथिछ्ठ इहेलाग। मगून्य कथा छिल কহিলাম। কিন্তু তিনি তাহাতে কর্ণপাত মাত্রও করি-যাঁহার নিকট মোক্তার ফোক্তারেরাও দাড়াইতে कम्भाग्रमान इग्न, आगता कुछ की छेमा की छे कि करि ভাঁহার নিকট দাড়াইয়া কথা কহি। জরিমানা माथिन कतिनाम এवर मास्व जुमि मीय (लिप्डिनिने গবর্ণরের পদে উন্নত হত্ত, এবং তোমার যশঃ সৌরভ দিগদিগন্তরে ব্যপ্ত হউক বলিয়া মনে২ আশীর্কাদ করিতে২ চলিয়া আ 'সিল'ম।"

উপরে যে ঘটনাটী প্রকাশিত হইল এরূপ ঘটনা এদেশে নিতান্ত বিরল নহে। ষখন কোন হাকিম ম-ফস্বলে গমন করেন তখনই প্রায় এরূপ অত্যাচার হইরা থাকে। আবার যে সমুদয় স্থানে ব্যাঘ্র ভল্ল,ক ও वना वतार আছে তথাকার অধিবাদীগণ ও জমিদার-গণের প্রতি যে কি অত্যাচার হয় তাহা বলা যায় ना। এই রূপ শিকারের নিমিত্ত ঢাকায় সম্প্রতি কি ভয়ানক ঘটনা হইয়া গিয়াছে। এক দিন ঢাকার কমিশনার পিকক সাহেব এবং চিরাপুঞ্জের ইংলিশ সাহেব এবং তাহার মেম হন্তী আরোহণ পূর্বক वाश्विकात कतिएक भ्रम्भ करतम। প्रथ रखी कि গতিকে চমকিয়া উঠে। ইংলিশ সাহেব এবং তাহার (यय रखी रहेर जुङ्ल পण्डिंड रन। পण्डिंड रहेश इंश्लिक मार्घि याङ्डिक थ्रथ्य थ्रश्त करतन, डंश्रित বল্লম দ্বারা তাহাকে আহত করেন। মাত্ত ষেরূপ আহত হইয়াছে তাহাতে তাহার প্রাণ রক্ষা হওয়া •স্থকঠিন।

मार्घ विश्वाशन इहेर्डन ना, এवर मिविलियान গণের মুখ লজায় ভাবনত হইতনা, লালচাদের প্রতি অত্যাচার করিতে গিয়া পরিণামে শুদ্ধ কার্কউড मार्घ्य यथ्भत्रवाखि भामित इहेत्लव नां, जादात অবিবেচনার নিমিত্ত মাজিফ্রেট মাত্রে সশক্ষিত इहेटलन। আবার মাণিকগঞ্জের স্ব ইনস্পেক্টরের উপর অবিচার করিয়া হয়ত অচিরাং ইংরেজেরা इहात कल जिल्ली इहरवन। अव इन स्लिखेन वलक आश्व फिल्बन धवर मि मावका बर्ड তাহার কাজ করিত। যদি সব ইনস্পেক্টর কখন मत्रकाति कार्यात वााघाण जमाहेश करनस्विन घाता নিজের কাজ করাইতেন তাহা হইলে তিনি প্রকৃত অপরাধী হইতেন কিন্তু তিনি তাহ। করেন নাই, मार्ट्य मत्काती कार्यात कां कि कतिया (कवन আমোদের নিমিত্ত এক জনকে ৰেগার ধরেন এবং সব বোঝা ঘাড়ে করিয়া বহিতে হইল। হস্তি অকষাৎ আশযুক্ত হত্যায় ইংলিশ সাহেব उ जाशात (यय इन्डि इरेड পि डिड इन, এरे जाश-রাধে যে ব্যক্তি বেগার দিতে আইদে তাহার প্রাণ नके कतिवात निमिन् जिनि जेएमाभी इन, করিয়াই আপাততঃ কান্ত থাকিব। উদাহরণটী এরূপ অবস্থায় ইংলিশ সাহেবের যদি কোন শান্তি না इय़ डां हा इहेटल (लां कित खडां वडः हेश्द्रक विठादित উক্ত ঘটনার কিয়ৎদ্দিন পরে কাছাড়ের ডেপুটি । প্রতি অশ্রদ্ধা হইবে। কল ইংরাজদিগের কর্তৃক মধ্যে কমিশনার সাহেব আসিলেন শার্দ হইতে হুকুম- এরূপ অত্যাচার হুতুয়া আমাদের পকে নিতান্ত कूलि मिर्ड इहेरन। किन्छ मार्टित्व भाषि ३० जन किन्छ विक्व इहेर्ड थाकि य छेश वाता भंतीत वाथिड न। इय ७७ मिन भंती दिया मिटक (लां कित मृधि পড़ न।। ক্যান্থেল সাহেব তিন বৎসর অত্যাচার করিয়া দেশের य मञ्जल क्रिया ছिल्लन, हिल्लाल मार्घ देव छानिक मां। बिल्ल विमान्स প্রভৃতি নানা मদ্মুষ্ঠানে তত উপকার कतिएक शातिएवन किना मत्नर। यमि नीलक तिता অত্যাচার না করিত তাহা হইলে প্রজার ত্রবস্থা (यां हम इडेड ना । कार्कडेड माइब लालहाम वावुत উপর অত্যাচার করিয়া দেশীয় লোকের ক্ষমতা রদ্ধি क्रिया मिल्निन। অপ্রাধী क्यांक्यार्थिक निक्र् जि मिया इंश्तांक कां कि कं कि वार्षां इंश्लान। वार्षां पत मयाज निधं न इहेश (माणिङगृज इहेशाइ। (माणिङ-শূज অঙ্গকে यि । অচল অবস্থায় রাখা যায় তাহা হইলে -उद्य जिया जीवन गृज इदेशा भए । अ (मर्म युक्त विश्व ह नाइ, ताजरेन जिक मलामिल नाई, युक्ताः इंश्तार ज्ता वरे क्रथ অত্যাচার করিয়া যখন সমাজ বিলোড়িত করেন তখন আমাদের কিছু মঙ্গল হয়। ইংরাজেরা যদি এখানে এত দিন পূর্বের তায় অত্যাচার করিতেন তাহা হইলে তাহাদের এখানে অবস্থিতি করা ভার হইত। তাহারা এখন মাঝে ২ অত্যাচার করেন এই निशिष्ठ आश्वता এक है २ अधिमत इहेट छि। यपि छा-श्रा मगूम्य অত্যাচার ত্রাগ করিয়া শান্ত মুর্তি ধরেন তাহা इहेटल আমাদের অধিক মঙ্গল কি অমঙ্গ হয়ল সে বিষয় তর্ক সাপেক্ষা

यथावर्डी (खानी उकत मश्कांख आहेन। मात ति हार्ड (हिस्लान थाजाना घरिंड शान-माखि कतांत উप्लिप्न (य মिनिषे निथ-সেই মিনিটের উপর নির্ভর করিয়া मख्य जः आशामी भी उकाल वा वस्था थक पी আইনের পাও লিপি উপস্তি হইবে। আমরা গত সংখ্যার পূর্ব সংখ্যক পত্রিকায় বলিয়াছি যে মধ্য-वर्ली প্রজারা এই সময় তাঁহাদের স্বত্বের বিষয় उथाशन कतिवात युर्याम शाह्याएक। वामारात यथावर्डी मल्यापां शतक विद्यां कतिया छेए छ जना ইংরাজেরা একপ অবিচার ও অত্যাচার করিয়া করার কারণ আছে। পৃথিবীতে মধাবর্তী শ্রেণী আমাদের কি তাহাদের অধিক ক্ষতি করেন তাহ সমাজের মেক-দণ্ড। অতাত দেশে যাহা হউক वाभरा विलिख शाति ना। वाभाषित विद्याम यपि वाद्यलाग्न मधावर्जी त्योत छे शिखि छ छ मि कारिशन मार्टिव वार्व खर्ज़िक नाथ वर्त्नाशाधाशाहरू मेम्लिखि इहेरछ। জমিদারের। ভূমির आभी वरिहे, অবিচারে পদচ্যত না করিতেন তাহা ইছলে লিবিং কিন্ত এপর্যান্ত মধ্যবর্তী শ্রেণীই ভূমির উপর কর্ছু कतिया वामियाए हन। 'य यात्म यथावर्डी (धनी थ्यवल (मथात्न জिমिদার विष् क्रिंगेश थिठांत कितिए পারেন না এবং দেখানে কৃষি প্রজারা অপেকাকৃত युर्थ थारक। धरे জग्र जिमिनादित्रां भारत ভদ্রলোক অর্থাৎ মধ্যবর্ত্তী প্রজা রাখিতে চান না। কোন প্রামে কোন জ্যা পলাতকা হইলে জ্মিদার कृषि श्राङ्घा भाई ल जात भाषामात्व जारा जारा जारा थिकारिक विलि कर्त्रन ना। कृषि थिकात्रा निर्तिथ কিছু বেশী দিয়াও জোতদার
শাতিদার প্রভৃতির वाशीति थाकिए (अग्रम्न गति कर्त, (कनना (कांड-দারের অধীন কৃষি প্রজার কোন বাঞ্জাট নাই, উপর इहेट य जात পড़ जाहा जाजमादि वहन

वाञ्चलांश ভূমির অধিকারীগণের মধ্যে মধ্যবর্তী (लागीत এই পদ, जाथि जाभाष्मित ग्रेवर्गिन कि वावश्राभिक्तां वह (लगीक वक्तां ति गंगा कर्त्न मा। श्वर्गामे अ (मर्ल (कवल इहे जनरक खूमित अधिकाती विलय्ना जात्नम, এक জिमिनात प्रिजीय প্रজ। অর্থাৎ কৃষি थाङा। [७ इरे कातित याथा ज्जीत এक जन य আছে এবং দে ব্যক্তির যে কৃষি প্রজা অপেকা কতক গুলি গুৰুত্র স্বন্ধ আছে, তাহা গোবর্ণমেন্ট श्वीकात करतन ना। २०२० मालित ৮ आहेन खुगा-थिकाती मः जाउ अधान णाइन। উহাতে জমিদারের प्राथीन (कवल कडकछलि जालूकनात मदस विथान व्याष्ट्र। किन्छ এই अथीन वा माश्रिलां जालूकमात्त्रता यে এक क्रथ জियमात এवং তাঁহারা যে জোতদার श्रीजिमात প্রভৃতির স্থায় নহেন তাহা সকলেই স্বীকার कतिर्वन। उৎপরে প্রজা ভূম্যাধিকারী সংক্রান্ত श्रिथान वाहेन २४६२ माल्नित २० वाहेन। वाग्रता श्वीकात कति (य, मून जाईरनत्र >६ धातात्र >१००० मालित ৮ আইনোক্ত অধীন তালুকদারদের স্বস্ব রক্ষা করিতে গিয়া ব্যবস্থাপকেরা অন্য মধ্যবর্তী সম্বাধি-कातीएत नाम উल्लिখ कित्रशाष्ट्रन। किन्छ म नाम्यत উয়েখই মাতা। সমুদয় দুশ আইনের মধ্যে মধ্যবর্তী थिकांत अब ममसीय এक जी शृथक विधान नाई। फ्रम আইনে সর্ব প্রকার প্রজাকে কৃষি প্রজার অন্তভূত क्रा इहेग्राइ। দশ আইনে ক্র র্দ্ধির একি বিধান কর আদায়ের একি বিধান, ভূমি জরিপ করার একি বিধান। জমিদার কোন কৃষি প্রজার कत त्रिक्त कतिए इहेल (य निष्णि जाति कर्तन, জোতদারের কর রদ্ধি করিতে হইলে সেই নোটিশ জারি করেন। প্রজার প্রতি নোটিশে কর রদ্ধির যে जिनि (श्कृ উল्लिখिङ श्रा, (জাতদারের প্রতি নোটিশেও সেই তিন্টী হেতু উল্লেখিত হয়। তবে আমরা কৃতজ্ঞ िए जीकात्र कति य शहरकार्ष कठकछिल नजीतित षाता मधावर्खी त्यागीत अब कठकछ। পृथंक कतिया मिशा (ছन। किन्छ आभाता भकः यदलत डेकील मिशा क জিজ্ঞাদা করি তাঁহারা মধ্যবর্তী প্রজার বিক্দো কর इिम्नत कग्रणी (याकलयांग्र पन वाहरनत ३० (४ व्याहेरनत 38) श्राताञ्चात्री (नार्षिण ना (निश्रा) ३१२० मालित ৮ আইনের ৫৩ খারা মত নোটিশ দেখিয়া-ছেন? শতকর কয়টী মোকদ্দমায় মধ্যবর্তী প্রজা यथावर्ली खड़ाधिकाती विलग्ना উদ্ধার পাইয়াছে?

क्लिजार्थ आইনের বিধান অভাবে হাইকোর্টের नजीत्त यकः श्वाल (कान कल इत्र नाई। জियमात्त्रत्रां कान श्राक मधावर्टी अवाधिकाती ना वलाई आर्थ। आवात यथावर्डी প্রজারা অনেক কারণে নজীরের ফলভোগী इरेड भारत नारे। अथान (म कात्र शिनत উल्लिখ (कान कल नाई। वखटः ইशई यित्राष्ट् (य यकः यहालत जामालङ मयुद्द यथावर्डी প্रজাतो कृषि थाजात याथा गणा इहेग्रा जामिग्राहि। उत्व हाहे-काटिं त य मकल नजीत वायता উल्लिখ कतियाছि जारा जाना म्लासे जारा विधिवक रय नारे य जारा आहित्व विशात्नित अভाव পূরণ করিতে পারে

আবার হাইকোটের নজীরের প্রস্ক কম্পর্ক, উহাতে

ि एिएलाल मार्घ्य य गिनिष्ठे लिथिशार्घन जाश-(७७ जिनि मधावर्जी यह पत्रत कान উ सिथ करतन নাই। তিনি কি নিয়মে প্রজার প্রতি করের হার নির্দারিত হইলে প্রজা ও জমিদারে বিবাদ নমিটিয়া यां श्र हेश है लहेश है वाछ। जवण जाहात गढ़ অर्थं कृषि প্রজা। কিন্ত মূল বিবাদ জিমিদার ও কৃষি প্রজায় নছে তাহা তিনি জানেন मा। জমিদারেরা মধ্যবতী প্রজাদিগকে কৃষি প্রজার অন্তভূত করিয়া তাহাদের উপর করের হার রদ্ধি করাতে তাহাদের চাপ স্বতঃই নিম্ন শ্রেণী প্রজার উপর পড়িয়াছে। জমিদারেরা মধ্যবর্ত্তী শ্রেণী লোপ করিতে (छिष्ठो कित्रश्नाष्ट्रम वर्छ, किन्छ मधावर्जी अत्र ध्रः भ कता काशतं माथा नाई। यथावर्डी व्यक्तांपत নিম্ন শ্রেণী প্রজার নিকট হইতে যে কর পাওয়ার श्वव वाष्ट्र, म श्वव इहेट (कह जाशां निर्माक विश्विष्ठ করিতে পারিবেন না। স্থতরাং তাহাদের উপর কর র্দ্ধি হইলে ভাহারা আবার কৃষি প্রজার উপর কর রদ্ধি कतिरव। सूज्रांश्यायर्जी अकृषि थाजा এक (धानी ভূক্ত इहेशा উভয়েই জমিদারের বিক্দো দণ্ডায়মান। অতএব গ্রবর্ণমেন্ট যদি মধ্যবর্তী শ্রেণীকে রক্ষা করার यज ना करतन, তবে প্রজাবিদ্রোহ কমান কালেও नियातिङ इहर्बना।

তবে (लः , গবর্ণর এই গুরুতর বিষয় সম্বন্ধে এতদেশীয় সর্বসাধারণের নিকট মত চাহিয়াছেন। विषिण देखियान मजा देजाट्या ध मधः स जांदापत অভিপ্ৰায় ব্যক্ত করিয়াছেন। ব্রিটীশ ইণ্ডিয়ান मजा জমিদারের স্বার্থরিকিণী मजा। আমরা বলিয়াছি (व মधावर्जी (लाभ कर्ता जिमिष'दित स्वार्थ। সুতরাং তাঁহারা ষদি জমিদারের স্বার্থের প্রতি দৃষ্টি त्राधिया गवर्गमिल शंतामर्ग (मन जारा रहेल (कर डाँशामिशक (मास मिट्ड शादान ना। श्वन्यान मख्य उः ই छित्रान लीग, ঢाका जन माथा तन मला, ताज-माशे मजा প্রভৃতির নিকট এসম্বন্ধে মত চাহিয়াছেন এবং আমরা শুনিতেছি যে জেলার কলেক্টরেরা লেঃ গ্বর্ণরের মিনিটের নকল জেলাস্থ ভূম্যাধিকারীদের নিকট পাঠাইয়া দিয়া তাঁহাদের মত চাহিয়াছেন। আমরা ভরদা করি উক্ত দভা দকল এবং ভূম্যাধি-কারীগণ ব্রিটীশ ইণ্ডিয়ান সভার তায় কোন বিশেষ (लागीत शक्क शांडी इइतिन ना। क समात, सथावर्जी उ कृषक, জনमगां क এই जिन्हीं (अभीतरे मगांन अरियां-জন। ইছার একটীর লোপে मমাজে বিজাতীয় বিশৃ-धाना घिरव। थका उ ज्याधिकातीर तत मरधा भाखि স্থাপন করিতে হইলে তিন শ্রেণীরই স্বন্ধ রক্ষা করিতে

আমরা এম্বলে জমিদার শ্রেণীকে একটা কথা विनव। भथावर्जी (धारीत (नार्थ ठाँशामित (य स्वार्थ থাকার কথা আমরা বলিয়াছি, সে অতি ক্লণস্থায়ী। वाखिविक ऋ विश्व জिमिना दि तत्र । (मिथि जि भा हे दिन (य কুষি প্রজার উপরিস্থ এক শ্রেণী ভূমির স্বত্বাধিকারী থাকা তাহ দের পক্ষে পরিণামে মঙ্গলকর। মধ্যবর্তী প্রজার (यार्ग किंगिमार्त्रत थाकना आमार्यत स्विधा इय। गथावर्जीक मन्नस् ताथिए शातिल निम (यानी थ्रजा मछ छ थाक। (यथान २ थ्रजा विद्याह घिष्ठाइ, অञ्चनक्षान कशिया (पिथिल श्रिका श्रिका क्षेत्राण इहेर्व (य उज्र इल मधावर्जी थ्राका रे जारात (नर्जा उ मिना पिछि। जार धव পরিণামদশী জমিদারের। মধ্যবর্তী শ্রেণী লোপ করিতে ठकी कतिद्वन ना।

তুর্কির স্থলতান সিংহাসন্চাত হওয়ায় বোধ হয় তुर्कित व्ययज्ञल श्रेष्टि मां, প্রত্যুত मकलে यज्ञलात আশা कतिराज्या जूर्कित मिश्शानामूज इउरा मयरक्ष তার যোগে এই সংবাদ আসিয়াছেঃ—

क्ति क्रिश्चिम् इंडि व्यवमत क्रान इंग्री তুর্কি রাজ্যে সামরিক ব্যয়ের অতিশয় অন্টন হয়। মন্ত্রিরা সুলতানকে ভাঁহার নিজ ভাণ্ডার হইতে এই नाश मश्कूलान कित्रिं विलन। जिनि अश्वीकृ इन এই নিমিত্ত রাজ ভবন সৈতেরা বেষ্টন করে এবং সামরিক বিভাগ হইতে ঘোষণা পত্র বাহির হয় যে, অ इहेट मूत्राम এফেन्मि यूलठान इहेटलन। এই ममाम এক জন স্থলতানকে শ্রবণ করান। স্থলতানকে বসা হয় যে, তাহার প্রজারা তাহাকে রাজাচ্যুত কর্ম (ছन। তৎপর তিনি ও তাঁহার রাণীগণ নৌক্ অগ্রত হইলেন। তাঁহার রাণীদিশের দারা ৫० थाना (नीका (वावार्ड इय़। वर्जमान स्माजान जर-क्मनाथ राज ज्वन अधिकात कतिलन। इनि मिश्श-मत्न আরোহণ করায় मকলেই मन्डके इहेग्राष्ट्रन। তুর্কির খৃষ্টান প্রজারা পর্যান্ত ইহাতে সন্তব্ধ হইয়া-(ছ्न। इंश्नछ, क्रांका, इंगिलि मक्टलई इंश्कि ञूलां विलिया श्रीकां त कित्राष्ट्रिन। ञ्रात्कत वि-शाम (य, এकार्याणी क्रानिय ग्रंवर्यस्टित व्यत्नष्ट्य मः घिष्ठ इहे ३ १ एए।"

উপরের তারের সম্বাদ দ্বারা অনায়াদে বুবা याई टि পाরে (य, जुर्कित यङ विश्व डाहात ममून रायत मून ञूलठातित वर्ष लालमा। मिश्शमन् । ज्ञा ज्ञा ज्ञा ज्ञा वर्ष नाम আধ্বত্ন আধিজজ। এ দিকে অর্থের অনটনের নিমিত্ত त्रांदि। त मगुप्र कार्या विगृश्थल इहेट एह, अ पिरक जिनि यमुष्ट्री वाश कतिएक। ইश्टि छाश्त निष्ठ कम वाश -পড়িত না। যখন তাহার বেগমেরা রাজ ভবন হইতে श्वाचित्रिक इन उथन इंशापित प्राता ७० थानि नोका পরিপূর্ণ হয়, সুতরাং ইহারা যে রাজ্যের অর্দ্ধেক ধন শোষণ করিতেন তাহার কোন সন্দেহ নাই। এক थानि ফরাশি সমাদ পত্র স্থলতানের অপব্যয় সম্বন্ধে लिथिइ। इन एय, जिनि एय गालिकात जे भत जे भरिकान করিয়া উপাদনা করেন তাহা পরিস্কার ও পরিচ্ছন রাখিবার নিমিত্ত বৎসর ১২ হাজার কাষ ব্যয় হয়। তাহার ডাক্তার ও কবিরাজের ব্যয় বংসর ७। १ लक्क का छ। এक का क छय जाना इहेरव। এकरा অপব্যয় করিয়াও তিনি ক্ষান্ত হইতেন না। তাহার निर्জित এक ी ভাগার আছে। ইহা অর্থের দারা পूर्न कितिएन। जिनि এই क्रिंश निक जहितिल ७ (कांगी ोिको मक्षेय करतन। यथन मिस्रिगेन आत युष्कत वाश मश्कूलन कतिए शादिन ना, जाश्ता (मिशिलन যে,রাজ্য রক্ষা করা ভার হইয়া উঠিল, অথচ স্থলতানের কোন মতে চৈত্ত হয় না, তখন ইহারা দিশিহারা इहेलन। তাহারা শেষে যে কোন গতিকে স্থলতানের ভাণ্ডার হন্তগত করিবার নিমিত্ত দূঢ়সংকল্প হইলেন, যত দিন আবহুল আজিজ রাজ সিংহাদনে আর্ড থা-किन, छै। होत्री (पिथिलिन छछ पिन हेहा अमञ्जर। छोहात्री এই নিমিত্ত তাহাকে পদ্চাত করা শ্রেয়ষ্কর বোধ করিলেন। তাহাকে পদ্চাত করার । ।।। व्यात এक ही कात व था किए शारत । मूता में हरक निन-সুশিক্ষিত এবং মন্ত্রিদের বিশ্বাস যে, ইনি আবহু वाि जिल विश्वा उद्युक्ति तथ ताला भागन कतित्व। আবত্নল আজিজ সিংহাদনে আরোহণ করিয়া তিনি कि व्यवालीएक त्राका लामन कतिर्वन काश्रत वक्री ঘোষণা পত্ৰ প্ৰকাশ করিয়াছেন। তাহার ঘোষণা পত্রের সারাংশ প্রকাশিত হইয়াছে। তিনি প্রতিজ্ঞা করিয়াছেন যে, রাজ বিচারের নিমিত্ত পুর্বের্ধ যে ব্যয় পড়িত তিনি সে বায় সংকীর্ণ করিবেন, স্থলতানের নিজের সম্পতি হইতে রাজ্যের ব্যয় সংকুলান করিবেন রাজ্যের রাজ্স যাহাতে রুদ্ধি হয়, প্রজারা যাহাতে শিক্ষা প্রাপ্ত হয় তাহার যত্ন করিবেন। তিনি রাজ मजात এयर ताज विघाताल यित मरकात कतिरवन। जिनि जाशत मञ्जीमिगाक এই क्रथ कान मामन खनानीत প্রবর্তনা করিতে আদেশ দিবেন যাহাতে তাহার রাজ্যের সকল প্রজাই সন্তন্ত হয়, এবং কেহ কেই " २५० (य जाति स्थ ख्लाजान পদ্চাত হন। এই। तथ निष्णी एन महा ग्रं करत। जिनि (भाष आणा

THE AMRITA BAZAR PATRIKA.

CALCUTTA, THURSDAY, JUNE 8, 1876.

It was left to the Bombay Share-holders to step in and rescue the Port Canning Company from a collapse. It was owing to them and no less to the energy of Mr. Sadanand Balcrishna, the late Secretary, and to the never-tiring exertions of Mr. Cowasjee Eduljee, the present agent, that the large Zemindaries of the company owe their present state of improvement. We are glad to learn that Cowasji is going to appoint Babu Brojo Jeebun Bose as their manager. A better selection could not have been made-

We do not often hear good reports about our Magistrates; it is therefore with a feeling of peculiar pleasure that we learn that Captain Gordon, the Cantonment Magistrate of Dum-Dum, is an exception to this general rule. He is stated to be a sincere wellwisher of the people, and has a kind word for every body that comes accross him. He has been, however, no doubt unconsciously, led to commit an error in regard to the re-election of the members of the Road Cess Committee, Dum-Dum Division, which is greatly to be regretted. We are told that he has overlooked the claims of respectable and conscrentions men of the locality, and the majority of his nominees are men of no position. An artificer of low caste, employed in the local Factory, and drawing as pay the paltry sum of Rs. 30 a month, has, we understand, been recommended by him for the responsible post of Vice-Chairman. This action of the Magistrate appears to have caused great surprise in the minds of the people of the adjoining villages, who have memorialized him on the subject, and is likely to alienate him from their affections. If Captain Gordon has really the good of his sub-division at heart, we hope he will not act against the voice of the people. Why not Babu Beni Madhub Chuckerbutty, the present Vice-Chairman, be re-elected to the post? He is, if we are rightly informed, a right man in the right place. There is yet time for revising the election and Captain Gordon would do well to withdraw his nominations, and send a fresh list of competent nominees in whom the people have confidence for the sanction of the Lieutenant Governor. The late Magistrate of Dum-Dum made similar mistakes in electing Honorary Magistrates, and we trust, the present Magistrate will also revise the election of his predecessor.

----The following sentiments are unworthy of the high position which the Englishman deservedly holds. Anent the proposal of the Statesman to declare the District Judgeships of the country open to the best of native Judges, the Englishman remarks, "theoretically nothing could be fairer than the proposed change; but how would it answer in practice? Who, by the way, are the people spoken of? If by 'the people' is meant the disaffected and disatisfied class who, having been educated at the expense of the State, expect also to have all the loaves and fishes as a reward for their condescension in allowing themselves to be intellectually improved, our contemporary is right in supposing that the reform advocates would create 'hope and contentment;' but if the real people are meant, it is very doubtful whether the ryots do not prefer the judicial system which gives them District Judges who are known to be free from caste prejudice and arrogance, and not to be influenced by class considerations in their judicial views on land questions. Is the educated Hindu or Mussalman an altogether superior article to that which has the witht to the verge of ruin Turkey, Egypt and Persia?"

As regards the common cant of the disaffected class having been educated at the expense of the State we can only say that it does not deserve a reply. If natives are to be elevated to the posts of District Judges they must be selected from educated classes. There is no help for it, for the " agricultural millions" are not competent enough to serve in that capacity. The argument of the Englishman depends entirely upon the assumption that the people prefer English to Native Judges. The writer ought to know that this is pure assumption and as such is a poor basis for an important conclusion in which nations are affected. It is more natural to suppose that one would have more confidence in his own kith and kin than in a foreigner, and it requires strong testimony before we can entertain a contrary supposition. It may be quite true that the English Judges are free from caste prejudice and arrogance (!) but it should have been also stated that they are innocent as well of the manners, customs, language and laws of the land. The writer also cites the examples of Turkey, Egypt and Persia, but we have yet to know that these countries owe their misfortunes to their District Judges. If the writer cites the examples of Turkey, Egypt and Persia we can also name that of Burmah, China and Japan. Surely these countries are not importing Englishmen to administer civil justice,

yet they are getting on pretty well.

THE POONA ADDRESS TO THE QUEEN.—The Poona address to Her Majesty must have struck him who has persued it, as a document of great ability. It reminds one of the memorial, submitted by the same body to Lord Northbrook, on the deposition of Mulhar Rao. It is a document singularly free from all affectations which generally disfigure cogratulatory addresses. It is a dutiful, respectful and affectionate address, at the same time frank, honest, and straight-forward. There is no humbug in it; it means what it is meant to mean, and is the candid expression of the feelings, wants and aspirations of a nation to its sovereign. There are some matters in it, however which do not meet with our humble approval. For instance the desire expressed to have representatives in Parliament is to our thinking impolitic in the highest degree. Thorough representation of India in Parliament is impossible, for it would transfer the reins of Government into the hands of the Hindoos which of course the English will not do. Neither can we expect as much representation as the Irish have, yet the Irish are not at all satisfied with their condition. They are for Home Rule or local Parliament, and want to be separated from the British Parliament. What the Irish found after experience injurious to their interests, we ought to be careful how we seek it, especially as we cannot expect the liberty of representing our interests as fully as the Irish at present enjoys.

But there is another point in which we beg to differ from the Poona memorialists. It serves no useful purpose whatever to give a long list of our wants, and they ought to have confined their prayer to one or two most important points, for that would have been more effective. They should have avoided particularities and stuck to constitutional reforms. But these are small matters. The address takes a comprehensive view of the present condition of India; how it is governed and how it can be governed better, and as such, is a valuable document, which may instruct, and help statesmen interested in the good government of this vast country.

The address was not however adopted without a protest. The meeting was attended by about 500 people, the flower of Maharashtra, and about 10 or 12 of whom opposed the address on the ground that as it was a congratulatory address, it should not therefore contain any political matter. There was of course a great deal of excitement, when Mr. Joshi, the founder of the Sarvajanik Shabha, and Mr. Tilang, the rising orator of Bombay, in brilliant speeches quieted the disturbance and the address was adopted with acclamation. What arguments these two talented men used on the occasion we do not know, but the question raised is a momentous one. That there is an impression in certain quarters that congratulatory addresses should not contain political matter is quite true, but it is worth while to examine how this notion originated and whether the notion is a correct one.

The Englishman referring to the Poona address remarks in its usual majestic way: "In congratulatory addresses it is not usual to allude to political matters, so the address should be rejected." The only ground stated is, that it is not usual. Well it may not be usual, but many things that are not usual are done in this world with advantage. It is not usual for Sovereigns to assume a title without the free consent of their subjects, but when Her Gracious Majesty adopted the title of Empress, her only subjects interested in the matter were not consulted. There is no Parliamentary statute however to shew that political matter is forbidden in a congratulatory address. So the question can be only decided by the public voice and the question was settled at a public meeting in one of the most intelligent cities in India. The ground that a practice is to be deneunced because not usual is extremely untenable. Custom is the law of the people and is therefore subject to their will.

But who said it is objectionable to introduce political matter in congratulatory addresses? It may not be done generally but it is oftentimes done, and good rulers do not take it ill, that their subjects open out their hearts to their lord protectors. It is neither unconstitutional, nor unusual for subjects approaching the Throne with congratulatory address, taking that opportunity of laying open their hearts, and giving vent to their wishes and aspirations. It would be no doubt more comfortable to have a purely congratulatory address; but if subjects rejoice at the happiness of their kings, kings should also sympathise with the legetimate aspirations of their subjects. Thrones also have their duties and when the people express their loyalty and affection, they have a right also to remind them of their duties.

The real question at issue is this: Whether grievances ought to be smuggled in a congratulatory address presented on a happy occasion. If the people have their grievances, they have their opportunity and time for representation. Now let us remove the word "grievances" and substitute a couple of words in its stead, for it is not fair to give a dog a bad name in order to have it killed. Let us say "wants and aspirations" instead of "grievances." If it is asked why "wants

and aspirations" at a moment of national exultation, we shall give our reason. The people of India have very little opportunities of approaching the Throne. Here an opportunity has presented itself, and it would be extremely culpable on their parts not to take advantage of it. Let not the carping critics forget that never did such an opportunity present itself to the Indian subjects of Her Majesty. There was one such opportunity in 1858, but then the people and the sovereign still entertained suspicion of each other. It is after a peaceful reign of 20 years, the sovereign suddenly recollects that she has too long neglected India and her Indian subjects; what more natural and what more proper that the people of India should express their gratitude at this condescension of their sovereign and take that opportunity of expressing their wants also? It is true the representations might have been made afterwards, but even an idiot will see the difference between a representation now and a representation hereafter. It is no sin for a nation to seek its legitimate interests, it is a sin on the contrary not to seek it. We have our wants and aspirations; if we represent them hereafter they may never reach the Royal ears, or meet with sufficient attention. If we represent them now there is a chance, however slight that chance may be, of their being heard with attention. It would therefore be an unpardonable omission, if the people of India let slip this opportunity.

Now as regards the propriety of smuggling "wants and aspirations," we shall illustrate our position by a poetical though apt illustration. Our readers we doubt not, will excuse us for this poetry. Suppose half a dozen of ragged children rambled about the streets unprotected and uncared for. A wealthy gentleman suddenly comes and recognises them as his children. What would the children feel on the occasion? They would feel unbounded joy, that their deliverance was at hand and now their wants would be removed. If one of the children then catches hold of his father and says "Father we have suffered much, nobody took any care of us, we are suffering from hunger and cold, please relieve us," If the children said so, would the father turn round and say "you ingrates! this is a moment of congratulation, why pester me with your wants, you have your time and opportunity, it is very unusual to talk of wants at a moment of congratulation. Thank me that I have recognized you and keep your wants to yourselves?" The people of India have long been uncared for.

We have said that the custom is not unusual in Europe to offer politico-congratulatory addresses to sovereigns by their subjects. But the usual custom in India is for the sovereigns to signalize happy occasions by good warks. During coronations the Indian Princes are required to weigh themselves in gold for distribution, to liberate prisoners, to grant jageers and do other meritorious works to signalize the happy event. Indeed it is cumpulsory for Indian Princes in every happy occasion, such as birth, marriage and so forth, to signalise those events by satisfying the demands of the people and thus infusing joy into every heart. The Poona memorialists only pray to signalize this event by certain reforms. It is needless to urge that simple recognition may not satisfy hungry children, their wants must be satisfied too.

There is another point, a very delicate one, which deserves notice. Will Her Majesty graciously condescend to accept the address or adopt the advice of carping critics and reject it? If she rejects it, it will no doubt grieve the people intensely, but it will not harm them.

THE UNCOYENANTED CIVIL SERVICE MEMORIAL:-"Whospever hath, to him shall be given, and he shall have more abundance: but whosoever hath not, from him shall be taken away even that he hath." This, in its grossest acceptation, appears to constitute the code which regulates the dispensations of Government. And "those who have" are naturally unremitting in their efforts to get in the harvest which awaits their appropriation. Scarcely a month has elapsed since the majority of the European section of the Uncovenanted Civil Service were, in the matter of leave of absence, admitted to rules similar to those of the Covenanted Civil Service. And now they have come forward with a Memorial to the Secretary of State for India, praying for the extension of the same indulgence to the matter of pension. They pray that they may be granted: -(1.) A reduction of the time of residence in India required to earn a a pension. (2.) A graduated scale of pensions allowing a certain increment for each additional year's service. (3.) A relaxation of the limit of age for commencing pensionable service. (4.) The fixing of the maximum limit of all pensions in pounds sterling insted of in rupees. We do not blame them for thus seeking to improve the financial status of their Service, but we cannot protest with sufficient vigor against the policy of courting and humoring their accelerating avarice, at the expense of India and India's rights.

The Memorialists evidently aim at securing for their service, one after another, all the enviable privileges enjoyed by their Covenanted brethren. But what does the consummation of their aspirations involve? It involves, virtually, the creation

of a new Covenanted Civil Service, the members whereof are appointed by Government, without the pre-requisite of a competitive ordeal. Now, such a Civil Service was to be inaugurated, expressly to do justice to the Natives of the country. The fair promise was formally recorded six years ago, but Government has not yet stirred a step to redeem it. The ethics of British statesmanship is elastic enough; and we should not wonder, if some day Government plead the Statute of Limitation, and backed out of the promise altogether. Nor is this the worst of it. As if the morality of coolly allowing a promise, made in due form, as a set-off against the wrongful withdrawal of the State-scholarships for facilitating the admission of natives of India to the competitive Civil Service, were not sufficiently heroic, Government would divert the direction of the promise, and exhaust its precious prospects on surefited Europeans. Is not this befooling "those who have not" of what little they have, and pandering to the insatiable greed of "those who have" or, to use ahomely adage, pouring oil on oiled heads? The question assumes a graver aspect, when we take into account the pressure it entails on the revenues of the country. The value of the privileges obtained and sought is not merely sentimental; so many "pounds sterling" have been thrown away, and so many "pounds sterling" are again conspired against. And all this unconscionable massacre of ethics and economics for those who, if the injunction that the Uncovenanted Service should be reserved for the natives of the country means anything, are, after all, interlopers in the Service, to be tolerated rather than encouraged! Is it possible to hear the whine of deficit, whenever India and India's wants are on the tapis and see the heroic diversion of Indian revenue to the protection of a European monopoly in the several Services, in the teeth of solemn promises and injunctions, without indentifying the scene as that of giving the children's bread away to dogs? The Native section of the Uncovenanted Civil Service should not swallow the stolen marches of their European compeers with resignation. They should use the occasion to prefer their claim to equivalent advantages. If their services to the State are not less meritorious, why should they consent to an inferior return? India should certainly bear the cost of service rendered, but it is gross misappropriation to draw on her revenues for paying any tribute to color. Let not Native Uncovenanted officers then submit, without a protest, to disparity in privilege, when there is no disparity in Service. If the financial status of the Service shall be raised, let not the elevation be invidiously partial. If there shall be extravagance, let the whole Service reup the benefit.

THE TITLE OF EMPRESS —It was in an evil moment that Mr. Disraeli took upon himself to confer a new dignity upon the Queen of England. This step has created a bitter spirit of hostility between the members of Parliament, and though there is no chance of a civil war, the feeling of the nation has been raised to the highest pitch. Duels are now not in vogue or possibly many duels might have been fought upon this measure of the Premier. The tide has now reached India, and the measure which disturbed so much the peace of England might possilly exercise the natives and residents of India in he same way. The meeting of the Indian League is a definite expression of one side of the question and the protests of the Indian Daily News against the doings of that meeting is the other. The opinions of Hindu Papers in this matter are not worth much, simply because Hindus are compelled to write guardedly on a subject which is too delicate for a conquered nation to deal with frankness. Yet the feelings of the majority are either hostile or indifferent. If they were assured that the assumption of the title would be followed by any material advantage to India there would no doubt be bonfires and fireworks to celebrate the event. But if nothing follows the assumption, either good or evil, it is to them a matter of the supremest indifference whether the Queen is styled an Empress, an Adhirajni or a Paramarani.

But the people whom the Indian Daily News represents have a real cause of alarm. In England and in Anglo-India there are people who do not believe in the divinity of kings. To them, loyalty is not a natural emotion of the heart but a feeling which is either founded upon utter selfishness or high patriotism. To them resistence to tyrants is obedience to God. A king is only to be supported when he is of service and spurned when he is not wanted. A king is but a Chief Magistrate who can be made and unmade at the will of the people-god. They endure Royalty because they cannot do without it. The great majority of those in England who enjoy power and influence hold this opinion. But a still greater majority of those belonging to the lower classes hold still stronger opinions regarding Royalty. To them any additional allowance to Royalty, either in the shape of money or honor is so much robbery committed upon the people. The additional title to the Queen is to these men an indignity to the people-god. Those who have confered it are the enemies of the people.

But it is not altogether a matter of pure feeling. Those who look, or fancy they look, deep, are afraid of serious danger to the liberty of the people when additional honor is heaped upon Royalty. Rulers have always hankered after higher titles and strongminded rulers like Cæsar, Cromwell and Napolean have been blamed for their weakness and vanity in this respect. It is doubtful whether it is due to vanity alone that strong-minded men, enjoying real powers, oftentimes risk a great deal for an empty title. Titles have their uses, for titles entitle rulers to usurp greater powers without opposition. They have a charm, which dazzles and demoralises the people; it has been always seen that the people will allow a great deal of power to a ruler bearning the title of Emperor than that of a king or a Protector. The people themselves instinctively feel it, and have always opposed their Rulers when assuming a higher title. Indeed Rulers have, when assuming a higher title, generally taken the people by surprise and secured the object of their ambition by something like a coup de'tat. It has been seldom the lot of rulers to be invested with a higher title by the people themselves; indeed the rulers have in almost every case taken the people by surprise; and the people have after this surprise allowed their monarchs to do whatever they pleased. Why was Runjeet Sing merely a Chief, though he was a powerful monarch and enjoyed absolute powers? It was because he dared not; he feared his people would not allow

In our own case we see the British India Government is always very anxious to be recognized as the Paramount Power. Not that the British India Government is not defacto the paramount power in India. The Indian Princes are at the mercy of the British Indian Government, and its supremacy is firmly established. Yet the Government lets slip no opportunity, and is always devising means to have itself proclaimed as the Paramount power in India. It was even at one time thought expedient to remove the capital to Delhi for that purpose. The institution of the order of Chapter of India was to secure that end. Periodical darbars are held for that purpose. The great political object of the Prince's visit was to assemble round him the Princes of India as his vassals. It was for this that a determined effort was made to bring the Nizam before the Prince. Why does then the British India Government hanker after the title of the "paramount power in India" when as a matter of fact it is already so? It is certainly not from motives of vanity, which might sway individuals but not a Government like ours. It is because the Government have a deep object in view. They can now depose an Indian Prince if they choose it, but they cannot do it without raising an intense clamor. The Princes demand an international law, they claim independence and resent interference, but if the British India Government is once acknowledged as the Lord of the Princes, the people will feel less if this acknowledged Lord interfere with his vassals.

So the people will allow greater liberties to Emperors than to Kings and Protectors. The notions of the people are that an Emperor and a Constitution cannot exist together. And they are perfectly right in their notions. Those who mean to maintain the constitution have no business to be an Emperor. It is those who are intent upon destroying it, that seek the higher title. When a ruler calls upon his people to make him an Emperor he indirectly claims despotic power and expresses his intention of destroying the existing Constitution. It was for this, when Mr. Disraeli proposed to confer the title of Empress of India upon the Queen that a great many people took the matter deeply to heart and expressed their strong disapprobation of the step. It is not merely from party spirit that this hot debate was raised; people foresaw danger to the Constitution and opposed the Premier with all their might. If the Premier had proposed the title of "Empress of the British Empire" there might have been a civil war, for England has not as yet gone so low as that. But the title of Empress will be confined to India, or (to speak more correctly) will not be used in Great Britain and Ireland. This assurance pacified the nation a little but not completely. Though the Queen cannot be called an Empress in England. she is to be styled so in the Isle of Man. If constitutionally Her Majesty is debarred from using the title in England, nothing will prevent courtiers and flatterers in styling her so. Gradually the people will be used to it, and what they at present condemn, may at a future period, be a matter of pride to them. Ministers may be found subservient enough to take advantage of this popular feeling to turn the Empress of India into an Empress of the British Empire. The very action of the Premier in exceeding the terms of his promise in the Proclamation shews the disposition of courtiers in such matters. Courtiers will always feel that it is more honorable to be in the confidence of an Empress than that of a Queen. And Queens will always reward those courtiers most who shall contribute to their enjoying higher titles and greater powers.

The thin end of the wedge has been introduce !. the doam of the English Constitution is sealed, and this is the opinion of a great many Englishmen

in England and India. The Indian Daily News is a fervent lover of the constitution, and need we wonder that he should look with displeasure at the doings of the people of Calcutta in connection with the title of Empress? According to these men the Indian League has strengthened the ministers and thus helped to ruin the British Constitution. Admitting this view of the case, may we inquire what it is to the people of India whether the British Constitution is ruined or maintained? They do not enjoy its blessings, they are as much under the protection of the British Constitution, as they are under that of the American Union. The glorious Constitution of England is the result of the successive effor the genius and patriotism of the British nacion and testifies to their greatness. But what is the

Constitution to us?

It appears that the English people have become for the first time alive to the dangers of ruling India as they are doing now. We have always advocated that unless justice is done to India, India will ruin England. England has many enemies, but none so dangerous and insidious like India. Sometime ago Mr. Fitz James Stephen, the great sanguinary lawyer, after his triumphant introduction of the Criminal Procedure Code in this country, wanted to fasten a similar Code upon the people of England but his attempt failed. Others will make the attempt, and if any meets with success, England will be indebted to India for that draconian Code. The other day an attempt was made to place certain restrictions upon the freedom of the. Press. The attempt failed, but the idea was imported from India. Sir George Campbell proposed to import servants from India to England for domestic use; used to the humility of Indian servants English servants appeared to him too impertinent. If Sir George Campbell can carry out this brilliant idea, we will have a system of slavery introduced in England. All these ideas have polluted the almosphere of England and prepared the nation for constitutional changes. And thus India's unnatural connection with England is already bearing fruit. The people of India have already given the liberty-loving Briton a live Empress.

Modern thoughts have not only divested rulers of their divinity, but the Divinity Himself of his authority. It may not affect them much, if we cite Divine laws to those who do not acknowledge his authority. It may not affect them much if we tell them that this or that is offensive to the Deity. But who can deny that those who are surrounded by slaves are themselves demora'ized? Who can also deny that superfluity of wealth demoralises a nation? A wealthy nation will not choose to fight if it can help it. A wealthy nation is naturally more timid than one who has very little to lese. A wealthy nation will choose to employ others to fight for it and thus forget the art of fighting. South America enriched Spain and ruined her, and the wealth of the East Indies has already demoralized the great English nation. But wealth does not demoralize a nation so much as a system of slavery does. When a young Englishman comes here, he is frank, generous, joyous and sincere. But when he goes home what is he? He is an animal, whose like it is difficult to find in the whole universe. He is an Indian nababas has been described by Marryat in his celebrated novel of Japhet in search of a father. He has spent his life amongst slaves, and men of independance offend him. His idea of a good Government is to reduce the people to the condition of slaves. We are thus importing hundreds of petty tyrants to England annually, to whom England appears a strange country and the people very impertinent. These men are gradually finding their way to Parliament, and a considerable number of the present M. P. s. are Anglo-Indians. The number of such men will gradually increase in Parliament, and in time they may come to govern the country. And then we shall have a ... minal Procedure Code in England.

The only way to obviate this difficulty is to govern India constitutionally. If it is governed as it is governed now, that is despotically; the evil will redound upon the shoulders of England. Every body knows that the British India Government is an absolute despotism. Sir Erskine Perry, a member of the Council of the State Secretary, admitted the other day that India is despotically governed. Candidly speaking we lose nothing by the assumption of the title. As regards constitution we have none, and we have nothing to lose. This is an opportune moment however. Her Majesty is in her best mood. The ministers want support and we shall support them and see whether we can secure for us some boons for our toils. If not we absolutely lose nothing.

SCRAPS AND COMMENTS.

The World edifies its readers with the follow-

ing:-"There is a strange tale abroad which show the perils that do environ all those that meddle with cold divorce. A gentleman was recounting his adventures in a country house to another gentleman, and. having told him of a remarkable accident that had there happened to him, the other gentleman immediately informed him that he was the missing co-respondent who

had long been sought, and that he should feel it his duty to inform the proprietor of the country house of the accident. Accordingly, not many days later, the victim of the accident received a citation to the Court of Probate and Divorce; upon which he said to the clerk who served with it. "I hope Mr. Proprietor will consider before he goes on with this affair, for I married his daughter this morning."

The tableau, as will be seen, was a very effective one.

The Americans will soon follow the example of their savage predecessors on American soil and turn human skulls into drinking cups. We are now told that :-

Mahrenholz, an American, has devised a plan for utilising the remains of his deceased fellow-creatures by converting their skins into leather. He has lately tanned the hide of a respectable working man who lost his life by a Ementable accident, and the value of whose skin was an immense boon to his disconsolate widow and children. A pair of boots manufactured from the skin of this ill-fated labourer have been deposited in the Smithsonian Institution at Washington, where they excite much interest and attention. It is proposed by the inventor to exhibit the boots at the Contennial Exhibition at Pheladelphia. The leather is remarkable for its softness and pliancy, and takes a good polish, but its wearing qualities have yet to be proved. The general impression appears to be that it is hardly adapted for rough work, such as that of sportsmen or pedestrian tourists, but for evening wear at the theatre or in the ball-room it will be found far more comfortable than boots and shoes made of ordinary leather. Some little prejudice, it is expected, will have to be overcome before the new leather is taken into general use." We shall perhaps ere long hear that human flesh is one of the most delicious food in the world :-

We take the following from the Times of India:-

"It is a significant fact that within the last four or five years divorces amongst people of really fair social position in England have become so numerous that there now exists a little society there, the female portion of which consists entirely of ladies who have loved not wisely but too well. A fellow feeling makes us wondrous kind, and as each member of this evergrowing social circle is aware that there is a slight speck in her own escutcheon she is indulgent to the little failings of her neighbours. In this way a beautiful feeling of sisterly charity is encouraged, and we are told that there is not half so much scandal talked in this slightly damaged community as is daily and hourly circulated in the chaster drawing-rooms of their immaculate sisters. It must be admitted, however, that society has come to a pretty pass when such an advertisement as the following appears in so respectable a journal as the Morning Post:

A lady of requisite fortune may have exceptionally stylish PRIVATE ROOMS or SHARE a refined Elegant HOME, unsubjected to any restraints or prejudices, in the house of another of gay and enjoyable habits, living alone upon equivalent income. Letters only, with fullest particulars, name, &c., confidentially indispensable .--- C. S., 160,

Piccadilly."

According to an English paper:-

"A new invention has been offered to the War Office the principle of which is that every bullet shall without. fail be provided with its billet on the body of an enemy The inventor professes that by his method the range of a gun can he discovered with unfailing accuracy. He is prepared to impart his valuable secret in consideration of receiving the round sum of £1,000. The War Office people naturally hold back, afraid lest they should be hoaxed as once upon a time a certain Government was hoaxed by a female quack, who pretended she had discovered an infallible remedy for a dangerous disease. The enterprising woman demanded several thousand pounds for the communication of her priceless secret, and on receiving the cash she natively stated that her cure consisted in administering crushed egg shells to the patient! The War Office very wisely demands some proof of competency on the part of the inventor before it "parts," while that worthy on his part stands out for ready money down." And so the matter stands at present.

The progress that the women of America are making is marvellous, as the following items taken from an American paper just to hand, will show :-

The Interior in a recent issue says "Miss Sarah F. Smiley is preaching at the Rev. Dr. Shaw's church, Rochester, N. Y., to immense audiences." A correspondent asks:

Mrs. Laura C. Holloway, who has already gained a distinguished position as a journalist, has made a successful debut as a lecturer. She delivered her lecture entitled "An Old Grudge--- A New Foss" in the Brooklyn Academy of Music, last week, to a large audience; and she repeats the present week, on the night of April 6th in the large hall of the Cooper Union. Her subject is "Woman's Right to a Share in the Government," which she is said to treat in a new manner.

Miss Lavinia Goodell furnishes, in the Chicago Legal News, critical review of the reasons assigned by Chief-Justice Ryan for denying her application to practice law in the Supreme Court of Wisconsin. "The common law," said the learned Judge, "has always excluded women from the

bar, ever since courts have administered the common law." To this Miss Goodell replies :---

"This is the commonly-received doctrine; but is it correct? Common law consists in immemorial usage, and is defined in the decisions of the courts and in some declaratory statutes. Has common law always or ever excluded woman from the bar? Never because until within a few years, in America women have never applied for admission. And now, when they have applied, under statutes making no express provision for the admission of woman, the weight of authority is in favor of their admission. That by immemorial usage, women have not studied law and applied for admission to practice, makes no common law against their admission."

The Calcutta Statesman says :--

So far back as 1854, Colonel Cotton called attention to the fact, that we might manufacture sea water salt of the greatest purity in any quantity, at a cost of about four annas per ton. But there is no one in the Indian Government who seems to think it incumbent upon him to inquire into the matter. Colonel Cotton's suggestions were brought prominently to the notice of Government by us several vears ago in the Indian Economist, and we would again call attention to them. We are importing from 250,000 to 200,000 tons a year of Cheshire salt, at a cost of about 30s. to 35s. per ton; while Colonel Cotton insists that we may manufacture it upon the spot in any quantity, and of the purest quality, for a few annas a ton only. Now, if this be true, we are needlessly throwing away every year

£300,000 to £400,000 upon the import. Colonel Cotton tells us that the native mode of manufacturing, in which we were engaged, was open to the same objections as many other of their operations, viz. that they are carried on upon too small a scale, and without capital. We think it impossible to conduct the manufacture, except on the lowest lands, upon the sea-level. The expense of raising the sea-water and conveying it some distance inland to proper reservoirs precluded the people from attempting it, although liable to have their whole desposits detroyed by floods, with the pans at sea-level.

Now, that the Sultan seems to have retired from playing a prominent part in European poilties, it may be as well to give the following sketch of his

career up to the present moment :--

"Abdul Aziz Khan, Sultan of Turkey, was born. February 9, 1830, being the second son of the Sultan Mohmoud Khan, who died in 1839, and brother of the late Sultan Abdool Medjid, on whose death, June 25, 1861, he ascended the throne of the Ottoman empire, according to the custom which prefers a brother to a son as heir. He has much stronger military tastes than his predecessor. His Government succeeded in raising several loans in the London money market, for the avowed object of reforming the finances of the empire; but whether these reforms are real or illusory, time alone can prove. One of the most troublesome questions that for some time affected the interests of the Porte, arose out of the scheme of M. de Lesseps, for the formation of the Suez canal, as the Emperor of the French gave a decision in favour of the Company against the Viceroy of Egypt, by which the suzerainty of the Porte was virtually ignored, and its claim therein imperilled for the future. The Sultan, who has concluded treaties of commerce with France and England, visited the exhibition at Paris in July, 1867, landed at Dover July 12, and was enthusiastically received in London. The Sultan's Government was greatly disturbed by the insurrections in Crete, which were fomented by Greece; but peace was ultimately restore lat the close of the year 1868." We take the above from the Bombay Gazette.

The Celestial Empire says:

"We hear privately from Peking that Sir Thomas Wade is preserving a very unconciliatory attitude towards the Chinese Government, persistently declining te enter upon any cordial intercourse with the Ministers until the Yunnan outrage is satisfactorily atoned for. It is stated that the Flying Squadron's visit to China has a specific object in view; and the Minister is otherwise strongly supported. The present position of Germany towards Peking, too, in no way detracts from the stability of our own pretensions. Meanwhile Prince Kung is said to be utterly demoralised with all these anxieties and complications, and it is reported that the disasters of Tso Ts'ungtang have had such an effect upon His Imperial Highness's system that he has not been visible for forty days."

The Penang Gazette of the 13th May, publishes intelligence from Acheen to the 9th May, and the news is not favorable for the Dutch :-

"It is true, says the Gazette, that the reports, spread by natives, are generally absurdly exaggerated, nor are we convinced that Syed Abdulrahman will meet with the support which his partisans would fain see him acquire. Yet the spirit of resistance is far from broken, and the Achinese have again given proofs of their determination to continue the war. They lately attacked the Dutch at a fortified camp, near Oleyley, the thriving port of Acheen Besaar. They were speedily repulsed, but not before they had killed 2 Dutch officers and 4 or 5 privates, besides wounding several of their enemy. The Achinese loss was heavy; they left a dozen killed on the field. There have been heavy rains at Acheen, which have caused serious damage."

Tunku Payah, well known at Penang, one of the foremost champions of the independence of Acheen and a warrior of great renown, left Penang a few days ago for Acheen, in order to take part in the

The Cape Argus has been informed that the value of the diamonds exported from the Cape last year amounted to about two millions sterling.

The Pioneer hears that Mr. George Adams, the well-known London sculptor, has been consulting with the Master of the Mint about a new design for the rupee. This means, of course, that Imperatrix Indiæ is to be stamped on our coinage, and not that a new rupee is to be invented which, Dei Grat ia, shall be worth two shillings sterling.

One of the chief attractions in the Philadelphia Exhibition is one million of money, in gold. For it is said that no millionaire has ever yet seen one million of money, all at once, displayed before his eyes. A bank cashier alone may have seen such a sum. Philadelphia is to show this wonder, this monster, this idol, the cause of so much joy, so much pleasure—so much sorrow, so much evil, sin, and crime.

The extent of coffee cultivation in Wynaad has increased from 7,275 acres in 1860-61 to 32,180 acres in 1874-75. The total value of the land under cultivation is £965,430, and the amount expended annually in coolies' wages alone is £182,500; other expenses in connection with cultivation, carriage and shipment of crops, amounting to £100,000. There are altogether 117 European planters, 16 of whom are in North Wynaad, 74 in South Wynaad, and 27 in South East Wynaad. The total revenue of the Wynaad Taluq from all sources has increased from Rs. 2,00, 886-2-3 in 1871-72, to Rs. 2,31,971-10-9 in 1874-75.

The following instance of legal injustice is taken from Indian Public Opinion, published at Lahore: -"Another victim has fallen to our legal system. It may be remembered that some years ago we greatly interested ourselves in the case of Jia Chand, son of Gouri Shah of Batala, who from a state of great affluence fell into beggary in consequence of an execution of decree, now admitted to have been obtained or carried out in an improper manner. Mr. Boulnois to his credit be it said, seemed to take an interest in the matter, but nothing could be suggested beyond an appeal to the Privy Council, and to

do this Jia Chand had not the means. He died a few days ago of starvation at Umritsur, whilst his brother wandered disconsolately about to beg for a sufficient loan or gift to buy the wood wherewith to burn the dead body. The brother now constantly passes and repasses the houses and the property, of which law, which is not justice, has deprived him, and we trust that he feels the advantage of his rights having been sacrificed to technicality and routine, the combination of which is sometimes synonymous with the "impartial adminstration of British justice."

In the 'agony column' of a recent issue of the Times appeared the following :-

'Apology.-The gentleman whose hat was knocked off in the Regent's Park on Saturday, 22nd April, is earnestly requested to send his name and address in order that a full apology, &c. may be at once offered. Address ----

The humble apologist is not likely to be disappointed, if it be true, as the postmen declare, that he has already had a thousand applications for his truly Parisian request.

Says the New York Times :-

"Michael Gelgiman, a well-known sneak thief residing in Elizabeth, N. J., has been discovered in the act of attempting to rob the money drawer in Jackson's saloon, near the Singer Sewing Machine Works. He ran into the street, and was chased by an officer, who pursued him closely for several blocks. The thief ran down to the foot of Trumbull Street, and darted into the mouth of a large sewer, which empties into the river. The officer procured a lantern and followed him for a short distance, but was finally so much overcome by the gases and offensive odours that he was compelled to retrace his steps. In the meantime Gelgiman, who had seen the gleam of light from the lantern in the hands of the officer, crawled into one of the branches connecting with the main sewer, and made his way to a man-hole, through which he hoped to make his escape, but he found he could not climb up the sides of the man-hole. After wasting his strength in desperate but ineffectual struggles to release himself, his agony became intensified on finding that the tide was rapidly rising. The water rose until it reached his breast, and he was nearly suffocated by the fetid atmosphere which he was compelled to breathe. He could hear only faintly the noise of traffic in the street above, and he shouted while a particle of strength remained, but his voice could not be heard. When the water receded he renewed his struggles until he fell fainting and completely exhausted into the mud and filth with which the bottom of the sewer was covered. His face came in contact with some water flowing through, and this seemed to revive him. Then he began to crawl backwards, and his utter despair produced a feeling of desperation, which imbued him with a new strength, and he continued this desperate struggle, until he found himself against the mouth of the main sewer. He fell unconscious on the sandy shore, where he was discovered-by some passers-by, who rendered him assistance. He was in a horrible condition. The flesh was worn off his fingers, and the nails had almost entirely disappeared. His hands and knees were Cleeding. and in some places the bones were exposed. His head was one mass of bruises where it had come in contact with the brick walls, and his clothes were torn into shreds. He was covered with dirt and filth from head to foot, so that he bore only a slight resemblance to a human being. He had been in the sewer three nights and nearly three days, but they seemed to him to be months. Gelgiman was taken to the police headquarters, and thence removed to the almshouse for medical treatment. Being a man of unusually strong constitution, he may recover from the effect of his forced imprisonment, but it is considered very doubtful. As it is thought he has been sufficiently punished already, the charge of larceny will not be pressed against him.

In view, perhaps, of Russia's rapid advance to the East, the military arrangements in India are being perfected in the best way possible. The Secretary of State for India has notified that the necessary machinery and appliances for the manu facture of 9 pounder Hales war rockets at the rate of 300 per month, will be supplied to India. The Machinery when received, is to be fitted up in the existing factory at Dum-Dum, where, it is thought, there is sufficient space available for the purpose, with the exception of the rocket and pellet machines which, from the nature of the work carried on, will necessitate a separate building for each.

A letter from Mustung to the Bombay Gazette says that the Khan of Khelat declines positively to come and meet with Major Sandeman at Mustung. He is also far from pleased with the conduct of Major Sandeman in having treated with his recusant Sirdars behind his back. He looks upon Major Sandeman as a chota sahib, and says he will hold direct "communication with the Sirkar whose pattawalla he professes to be." He expects the British Government to aid him with money and arms as they have done Shere Ali, if he is required to restore order in Khelat.

The anniversary of the terrible accident to the three aeronauts in the great balloon, the Zenith, which caused such general consternation and regret, throughout Europe, just a year ago, had been marked by the occurrence of a similar catastrophe; the Nord, a fine balloon, manned by the well known aeronaut, M. d'Artois, and two other gentlemen, having capsized in a gale, throwing out the three passengers from a height of 100 feet. They have all broken limbs; and the life of one of the party is in danger.

In connection with the Princess of Wales going out to meet her husband, says the Bombay Gazett's London correspondent, I may mention a circumstance which may occasion some surprise. Her Royal Highness asked the Queen for permission to sleep at Osborne on the Wednesday night rather than have to stay at Portsmouth, But Her Majesty refused her permission and advised her to apply to the Admiralty for the use of one of the yachts. This was done and the Enchantress had to be hurriedly prepared with sleeping accommodation for the Princes's and her children.

An Ottawa paper says that Mr. G. P. Drummond, of that city, has forwarded a new type-setting machine of his own invention to the Phila-

delphia Exhibition :-

"Mr. Drummond has been engaged for some years past in bringing his invention to perfection, and about seven months ago he commenced making the present machine. It is a handsome piece of workmanship, being made of polished steel and iron, with brass finishings. The principle is an entirely new one, the machine being worked by combination keys and an electric battery. It will set very rapidly from undistributed type, in accordance with the skill of the operator. The mechanism is simple, the type being controlled by five or ten keys, either of which numbers are sufficient to reach the different letters of the alphabet. The art of operating, it is said, may be acquired very easily. The invention has been patented in Canada, the

United States, and the principal countries of Eu-

rope.

KHANATE OF KHOKAND.

(The Times.) Mr. BAILLIE-COCHRANE, in calling attention to the occupation by Russia of the Khanate of Khokand, said that on one point there would be a cordial agreement—that the interests of India and the interests of England were identical, and that anything which tended to weaken us in India ought to be carefully watched. The House would agree with him that there was only one Power we had to consider when the question of India was discussed. Germany, France, and Italy had no interests in India, while Persia and Afghanistan were only of importance by relation to ourselves. There was but one Power to which we had to look, and that was Russia. The wild nomad tribes of Turkestan looked to the North and saw a colossal Power sweeping down, conquering their independence-sometimes advancing slowly, as in 1836, and sometimes with great rapidity, as in 1875 and 1876, but always continuously. If they looked to the South they saw another great Power, not so much distinguished for its military strength, but which was mistress of the seas. That great Power had marched on until she had arrived at the Indus and reached the foot of the Himalayas, while the wild tribes of Turkestan looked forward with the greatest interest and anxiety to a time when these two great Powers should be in presence of each other. No one would dispute the progress of Russia in Central Asia, but that progress was differently regarded by two schools of thought in England. One of those schools was represented by the hon. member for Kirkcaldy, (Sir George Campbell) and included men of the greatest ability and knowledge of India. They viewed the progress of Russia without alarm, and looked forward to a time when Russia should advance her frontier to the foot of the Himilayas. They regarded Russia as a civilizing Power, and thought it better that the wild tribes of Turkestan should be conquered by Russia, and that there was less chance of disagreement when these two great Powers joined their frontiers than at present. There was, however, another school who thought very differently, and he would endeavour to represent their views. They regarded with the greatest anxiety the progress of Russia in Central Asia, and, without anticipating a time when Russia should either couquer India or attempt to do so, saw the danger of this constant approach towards our Indian frontier. When the frontiers of two great Powers like Russia and England were contiguous great armaments must be kept up, because that very contiguity necessarily led to an increase in the means of defence by both. The great desert which fomerly separated Russia from our Iudian possessions was the greatest possible protection to us. It represented the Channal between England and the Continent, and enabled 60,000 troops in India to govern and control 200,000, 000 people. This class of politicians anticipated a time when, if Russia advanced any further, we should be compelled to keep three times our present force in order to occupy the position we now hold. This must be admitted to be at least a plausible view. He did not imagine that a great Power like Russia would come down upon our Indian Empire without notice; but in the event of a European war the contiguity of the two frontiers would render it necessary to keep an enormous force in that country. Had anything changed since 1869? Russia had advanced since that time 1,000 miles towards our Indian frontier, vet her advances had attracted so much attention in Eu-

"Unless stringent precautions were adopted, we should find before long that some aspiring Russian General had entered into communication with some restless or malcontent Indian Prince, and that intrigues were rife, and disturbing the Indian population on the frontiers, against which Her Majesty's Government would have a right to remonstrate with Russia; and it was in order to prevent such a state of things, which might endanger the good understanding which now existed, not only on this but on all other questions, between England and Russia, that I earnestly recommend the recognition of some territory as neutral between the possessions of England and Russia, which should be the limit of those possessions and be scrupulously respected by both Powers. Baron Brunnow appeared to think that this would be a desirable arrangement, and promised to make a report of my suggestion to his Government. His Excellency called upon me this morning, and had the goodness to leave in my hands the copy, herewith enclosed, of a letter from Prince Gortchakoff, giving a positive assurance that Afghanistan would be considered as entirely beyond the sphere in which Russia might be called upon to exercise her influence. Prince Gertchakoff replies,- 'The idea expressed by Lord Clarendon of keeping a zone between the possessions of the two Empires in Asia, to preserve them from any contact, has always been shared by our august master."

rope that Lord Clarendon wrote, on the 27th of March,

1869, to Sir A. Buchanan :-

Lord Clarendon, subsequently writing to Mr. Rumbold, said :-

"It was thought advisable to propose that the Upper Oxus, which was south of Bokhara, should be the boundary line which neither Power should permit their forces to cross. This, I said, would leave a large tract of country apparently desert, and marked on the map before us as belonging to the Khan of Khiva, between Afghanistan and the territory already acquired by Russia, and, if agreed to would, it might be hoped, remove all fear of future discension."

Sir A. Buchanan, writing in July, 1869, and giving an account of his interview with the Emperor, represented to His Majesty that while India and Russia remained as they are the good understanding which happily existed between the two countries would not be disturbed, but that the number of persons in England who were interested in the prosperity and transquillity of India was very great, and that in the event of a conflict between Russia and Afganistan, or of the entrance of Russian troops into provinces bordering India, public opinion might be so excited that Her Majesty's Government might be obliged to take measures to satisfy it entirely inconsistent with the views they at present entertained,

"The Emperor answered that he quite understood this, and it was only natural, but there was no probability of any event occurring to create such a state of feeling as that to which I had alluded, for I must know that he had no ambitious views, and that he had been drawn by circumstances ('que nous avons ete entraines') further than he had wished into Central Asia."

Lord Clarendon, writing to Sir A. Buchanan on the 3rd of September, said that Prince Gortchakoff told him the Emperor considered-and the Prince entirely shared His Majesty's opinion-that extension of territory was extension of weakness, and that Russia had no intention of going further south. No attack on India would then have been possible, but since the railways had been opened to Orenburg and Samarkand a force of 300,000 or 400,000 would supply the place of a much larger army. Writing on the 3rd of September, 1869, Lord Clarendon said:-

"Prince Gortchakoff said the Emperor considered, and he entirely shared His Majesty's opinion, that extension of territory was extention of weakness, and that Russia had no intention of going further south. It was satisfactory, I replied, to learn that the Emperor had arrived at such a sound conclusion respecting the interests of Russia, but that when I considered the rapid advances of Russia and her great organization of territory within the last five years, it was impossible to doubt that her army had been impelled forward either by direct orders from St. Petersburg, or by the ambition of Generals in disregard of the

pacific intentions of the Emperor."

They had, therefore, to do not only with the Emperor of Russia, but also with the army, and throughout the correspondence they would find that the Emperor said he was against advance and annexation. But then the Generals advanced in spite of the Emperor and without any apparent authority to do so; and it was found that when those Generals returned to St. Petersburg they were invariably received with respect and honour; they were decorated, and every approval was apparently given to their conduct. That was a fact which ought not to be lost sight of in considering this subject. The Emperor was most pacific in his tendencies, but they knew what had happened since 1869, notwithstanding those pacific tendencies. Lord Clarendon

in the same letter continued :-

"I pointed out the various acquisitions of Russia, and the dates at which they were made, adding that, Russia being now in possession of Samarkand, Bokhara was completely in her power, to which his Excellency assented; and that the next step onwards would probably be to Balkh, which could be of no use to Russia except for purposes of aggression; and that on the Hindoo Koosh the British possessions might be viewed as a traveller on the summit of the Simplon might survey the plains of Italy. The only apprehension we had was, I continued, that the nearer approach of the Russians and intrigues with native Chiefs might keep the Indian mind in a ferment and entail upon us much trouble and expense, all of which would be avoided by a clear understanding with the Russian Government, by which a neutral ground between the possessions of the two countries might be established. Prince Gortchakoff replied that he could take no exception to anything I had said, and particularly with regard to the military commanders, who had all exceeded their instructions in the hope of

gaining distinction." Now let the House consider what had been the proceedings of Russia since 1869. In that year General Forsyth, an officer of distinction, was sent to Russia, and the most positive assurances were given to him that no further advances would be made by Russia in Central Asia. But two years subsequentlý, when Samarkand was occupied it was distinctly stated that Russia preferred to give it up. Agáin, in 1873, the present Russian Ambassador was sent on a special mission, and it was stated that there was no intention of occupying Khiva, that the object in view was to punish certain troublesome tribes, but what was the result? Khiva was occupied then and was occupied still, and this very year they found that Russia occupied the Khanate of Khokand, and incorporated it with its own territory. (Hear, hear.) So much for promises and pledges, so much too for a neutral zone. He would ask the House whether they did not consider that our rule in India was one of prestige. In the admirable biography of Lord Macaulay which had recently appeared, it was stated that the first observation Macaulay made when he landed in India was that he had arrived in a country where he found that our power depended upon our prestige of being a nation of warriors. Was it or was it not the case that we had lost prestige in India ? He ventured to say, and he had heard from those who had recently come from Central Asia, that the opinion is gaining ground that England is losing influence and power, and that the only Power certain to advance was Russia. What said a high authority, Lord Napier, in another place? He said :---

"He should never forget the painful impression with which he once heard the expression of a Russian diplomatist and statesman upon that subject. In conversation with him upon certain political eventualities which seemed to be impending, he (Lord Napier and Ettrick) said that in such eventualities the resistance of the English Government might be expected. "The Russian statesman replied in deprecation and surprise, Resistance, my lord, is a word which no longer exists in the political vocabulary of England." If such an impression existed in the mind of a Russian statesman might it not exist also in the minds of the ill-informed and easilydeluded classes of our Indian fellow subjects?"

(Hear, hear.) He could quote from many Russian newspapers and other documents to show the hostile feelings which existed towards England, but he would content himself with a few extracts. One Russian paper said that Russia looked upon the successive territories annexed as stations in their march towards India-stations where they could rest prior to further advances. M. Terentyeff says :-

"Our Central Asia possessions serve only as an etape on the road to further advance, and as a halting-place where we can rest and gather fresh strength. . . . Russia has been permitted to make vast headway, and is likely not to miss profitting by the opportunity."

M. Ferrier writes :-"Herat and Kandahar once in the hands of the Russians. they could become the arbiters of the various and conflicting interests of Central Asia, and could unite them all in her own favour. The very presence of the Russians in that country would of itself immediately create a hostile feeling among the native population."

They saw what strides Russia had made within four years. Did they think she would be content with those advances? (Hear, hear.) Were they or were they not prepared to allow Russia to occupy Kashgar? On this subject Mr. Frederick von Hellward, who had written on the subject of

Russia in Central Asia, said :---"The circumstance that the influence of Russia is daily increasing, while that of England is declining, and that England is thus quietly being lifted out of the saddle, appears to us fraught with serious consequences in the proximate future. The British statesman ought to have foreseen this peril and nipped it in the bud, and to have placed in the very beginning a veto on the extension of Russian power in the East."

Again Vambery said :---"If the Russian diplomatists can persuade the English that the possession of Khiva is only provisory, it will be an easy thing for a Russian army to march on Afghanistan at a time when Great Britain is standing unprepared. I do not mean to say that Russia designs any surprise, and that England has generally to fear such an attack. No, the result of this chessmove will only be that Russia will arrive sooner in the true arena of subsequent events, and this precedence must not be allowed on the part of England. And, again, it is no longer asserted that the two great European Powers in Asia are only rivals in the field of geographical discovery, commerce, and Western culture. It is now confessed that a contest for supremacy is here involved, and indeed, that a vital question is at stake."

(Hear, hear.) In 'Clouds in the East,' a work written by the same author he found recorded a conversation with Alayer

are they now? They are at Samarkand, they are at Khol

and Bokhara is really theirs whenever they like to ta...

Khan, who said: "Ten years ago the Russians were a long way off; where

The English told them they were not to take Khiva, they took it. Now they are on the Oxus. They will come to Merv, they will be at Herat. And do you think the people you have conquered in Hindootan will be as quiet at they are now with the Russians at Herat?" It was important to bear in mind that from Merv to Herat there was water carriage, and also that between the two points there was a mail road, along which troops could make the journey from place to place in not more than four days. It was not long since a traveller had a conversation with the Khan of Khiva on this very subject, and the Khan, referring to the advances that were being made in the direction of the British frontier, expressed his wonder at the apathy of the British Government, and also his conviction that whether it was or was not distasteful to the English people, they would speedily have to fight if the existing state of things was allowed to continue. The opinion of Lord Palmerston on a question of this kind would be received with consideration by the House, and he would therefore read an extract from a letter which in 1847 the noble lord addressed to Lord

Russell: "A Russian force in occupation of Afghanistan might not be able to march on Calcutta, but it might convert Afghanistan into the advanced post of Russia, and whatever Hardinge may say of the security of the rest of our frontier, you would find in such a case a very restless spirit displayed by the Burmese, by the Nepaulese, and by all the unincorporated States scattered about the surface of our Indian possessions. These things would lead to great expense, require great efforts, and might create considerable damage. It is as well that we should be able to defend India in Asia, as well as in Europe."

The hon, gentleman the member for the Elgin Burghs had given much attention to this subject, and he had recently published a very interesting book of travels in which he spoke out distinctly his views in reference to the question, views which differed somewhat from those me had formerly expressed. The hon, gentleman said ;-

"Unless diplomacy keeps the Russians away from Merv we can take up no attitude in those countries except one," and, he added, "any aggression on the dominions recognized as those of Shere Ali means war with England."

(Hear, hear.) On the same subject Lord Derby addressed a speech to the House of Lords in 1874, in which he said: "To maintain the integrity and the territorial independence of Afghanistan, in our judgment, is and ought to be a most important object of English policy, and that any interference with the independence of Afghanistan would be regarded by Her Majesty's Government as a very grave matter, requiring their most serious and careful censideration, and as one which might involve considerable danger to the peace of India. I think if such an interference were to occur, to put it mildly, it is highly probable the

country would interpose."

It was not wished by any one that disturbances or misunderstandings should arise between this and any other country on the subject he was bringing before the House, and it was in order to diminish the possibility of any such event that he wished the country to inform itelf upon the question. He for one had no doubt of the sincere desire of Russia to advance the cause of civilization in every way, but he could not help feeling that every step made by Russia towards the British frontier tended to create a feeling of uneasiness, and he therfore hoped that Russia would desist from proceedings which, justfiable in the abstruct, might produce needless complications in the future. He did not pretend to say whether it was or was not the intention of Russia ultimately to attack the possessions of England, but he thought it highly important that the advancing tide of Russian influence in its approach to British India should be resisted. Thanking the House for having accorded to him a patient hearing on a not particularly interesting subject, the hon member concluded by moving. Address for copies of all correspondence between Her Majesty's Government and the Russian Government respecting the occupation by Russia of the Khanate of Khokand and of any reports by Captain Napier or other officers on the frontier States. (Cheers.)

The following telegraphic summary we take from the Dalies:

CONSTANTINOPLE JUNE 2. Abdul Aziz has addressed a note to Murad Effendi, in which he renounces the throne of Turkey.

CONSTANTINOPLE JUNE 3. The manifesto of the new Sultan of Turkey has been issueu. It reduces the civil list, and promises to relinquish the revenues from Crown property, to improve the finances and education, to reorganize the State Council and Ministry Justice. It instructs the Ministry to devise a form of 50vernment most suitable to all the subjects of the Ottoman Empire, in order to secure the liberty of everyone alike, and it hopes that the bonds of friendship now subsisting between the empire and the great Powers will be drawn still closer together. The manifesto finally proclaims the accession of Murad Effendi to the throne of Turkey by the will of God and the will of the nation.

ACKNOWLEDGEMENTS. SUBSCRIPTIONS.

D. Krishtna Rao Esqre., Daraparam Taluq ... 1 4 0 C. Moothooswamy Naidu Esqr., Secundrabad ... 2 8 0 Gopaldas, Esqr., Engineering class, T. C. E. College' Roorkee ... 0 14 0 S. Anund Rao Esqr., Mangalore, South Canara ... 5 0 0 P. Govind Charry Esqr., Palur Taluq, N. Arcot Dist. 5 0 0 K. Varaha Charry Esqr., Chedambram ... 5 0 0 Acharatlal G. Jhaveri Esqr., Broach ... 5 0 0 Gampatram Jebai Thakar Esq., Broach ... 5 0 0 Vanaikrao Gunesh Datar Esqr., Poona ...

Printed and published by C. N. Roy No. 2, Ananda Chatterjee's Lane, Bagbazar, Calcutta.

করিয়াছেন যে, ইউরোপের মধ্যে যে সমুদয় প্রধান রাজ্য আছেন তাহার। পূর্কো যেরূপ তুর্কির প্রতি আত্মীয়তা দেখাইতেন এখনও সেই রূপ আত্মীয়ত।

বোধ হয় এ যাত্রা তুর্কি রক্ষা পাইল। তুর্কি
বিপদাপন হইলে ইউরোপের অনেকের জিহ্বা হইতে
লালা নির্গত হয়। অষ্ট্রেলিয়া, জর্ম্মেনী, রূশিয়া মনে২
ছির করেন যে ইহারা তিন জন উহা পোলাণ্ডের
ন্থায় ভাগ করিয়া লই বেন। ইংলগুও বোধ হয়
লুঠনের মধ্যে থাকিতেন। ফ্রান্স সহসা কোন
বিবাদের মধ্যে বোধ হয় যাইতেন না। তুর্কির অবছার পরিবর্ত্তন হইবার সম্ভাবনা দেখিয়া ইহারা মনে
বোধ হয় অতিশয় কয়্ট পাইয়াছেন।

(थल १ एवं अ १ व महन शवर्षिय एवं ममून्य विष्य श्वित इहेश शिशिष्ट शूर्य अहे तथ त्रास्ट्रे हश। अथन खना याइटिएइ छादा नट्य। इंश्लिम श्वर्रिमएदिव एथिति कर्मिठाती थाँ दिक छाकिशा शाष्ठान। जिनि डिश्ति माक्षि कार्कि किति जिसी किति किति मा थात्र जाभीत्न (य ममूनश मक्तार्वता जार्ड जार्षित मर्ज डाँ रात्र विवाम। इंश्लिम शवर्णिए एवं अर्थित् क वर्मा हात्री (मज़त मार्शियान थाँ त मद्भ शूर्त्य (मथ्रा न। कतिया তাহার শত্রদিগোর স.জ সাক্ষাৎ ও আত্মীয়তা করেন। थै। ই हाट जिंद्र इन। (मज़ द्र मा जिमान थै। दिन **डाकिश शिठाहेल डिनि: जिल्मान क्रिशा डाहा**ब महिन माकार कित्रिक जाशमन करतन नः। जिनि भिष्ठत म'रहवरक वल्लन (य, जिमियमि इष्ट्रा कर्त्रन उत् डाइ। त्र क्षानी उ जामिया जो इ। त महा कत्रिष्ड शाद्रम। (बाबाई, शास्त्रिष्ठ मन्त्रेडि जाद्र मश्रीम भारेश्राष्ट्रन (य, थाँ। नांकि मािष्यान मार्ट्यत महिन माकार कित्रशाहिन। अधि के पृत्र में मशाम जाशा जामता विलिए शांति ना। जान शृत्व य क्रिश मक्टल जरूमान कित्रा। ছिल्लन य शांत महन इंश्ट्रबिक्ट(भव्न शिन्योश महत्क मिरिया याहित, अथन ्रद्रांथ इय जारा रहेट जिट्ट ना।

लिमाद्यत श्वर्व जाविम माद्य विश्वाभाव इरेब्राएइन। जाभारमं भाष्ठक वर्शन जावन जारइ जिन किक्तर्भ भित्रां कित्र यूरक्षत छे ९ भि छ कर्त्रन। छिनि जनर्थक পিরাকের রাজাকে পদ্চাত করিয়া তাহার স্থানে আর এक জনকে উপবেশন করান ও তাঁহার মনোমত একটা घाषना পত প্রচার করিয়া পিরাকবাদীদিগকে এরপ क्रिथाचिष्ठ कर्त्रन य जारात्री द्रिमर्ड मेर्ड मार्डिक्ट छिल्लिक इम्र जवर जरे यूक्त व्यविष्ठे इरेमा भागिरिम छ धटन প্রাণে রিন্তর ক্তিগ্রন্থ হন। এখনও এ রুকের শেষ इय नाई। इछिम ञाव नर्छम जाविम मार्ट्य विकास उर्क छेरियाए धवर (वाध इरेडिए जिन कर्म-চাত হইবেন। গাবর্ণর জারবিদ পিরাকের রাজার উপর যেরূপ অত্যাচার করেন, লর্ড নর্থক্রক মলহর बाउट्यंत्र छेशत खाश जाराई करतन। यिन शिवादकत ্রায় বরদায় যুদ্ধ উপস্থিত হইত এবং তাহাতে ইংর!-জরা ক্তিগ্র হইতেন তাহা হইলে গার্ণর জবি-भित्र (य मना इहेवांत्र मखावना लड नर्थकः क्रिज (वाध इय (मई मना इइंड।

জরপাল নামক এক খানি নাটক আমরা সমালোচনের নিমিত্ত প্রাপ্ত হইয়াছি। এ পুস্তক খানি
পাঠ করিয়া আমরা সন্তুক্ত হইয়াছি। যদিও এ পুস্তক
থানির অনেক স্থানে হেমলতার আভাস দেখা যায়
কিন্ত ইহাতে গ্রন্থকর্তা যে অনেক নৈপুণা ও চতুরতা
দেখাইয়াছেন তাহার কোন ভূল নাই। এ পুস্তক খানি
ঘিনি পাঠ করিবেন তিনি বিরক্ত হইবেন না। আমরা
এ পুস্তকের সমুদর পাঠ করি নাই কিন্ত যত দূর পাঠ
করিয়াছি তাহাতে আমাদের বিশ্বাস হইয়াছে যে,
এ খানি মন্দ হয় নাই।

তার যোগে সংবাদ আসিয়াছে যে, তুরক্ষের সিংহাসনচ্যত স্থলতান আত্ম হত্যা করিয়াছেন। কাঁইচি
দারা তিনি আপনার বাহুর ধমনী গুলি কাটিয়। ফেলেন
এবং ভাহাতেই ভাহার মৃত্যু হয়।

दिखाशन।

পাইকপাড়া নারসরি।

নিম্ন লিখিত এই সময়ের রোপণ যোগা বীজ সকল অতি স্থলত মূল্য বিক্রয়ার্থে প্রস্তুত আছে, যাঁহাদের প্রয়োজন হইবে আমার নিকট মূল্য পাঠাইলে ডাক যোগে রওনা করিব। ২০ প্রকারের দেশী সবজী মায় ৫।৬ রকমের শাকের বীজ ১॥০ টাকা,২৫ রকমের বাগান সাজাইবার ফুলের ছোট বড় ও মাজারি লতা ইত্যাদির বীজ ২॥০ টাকা। গত সন অপেক্ষা সর্বতোভাবে উংক্ষী। নানা বর্ণের বরিশার ডবল জিনিয়া ফুলের বীজ ফি প্যাকেট ১০ আনা ইহাদের জন্ম পেকিং খরচা লাগিবে না।

আমেরিকা হইতে নানা প্রকারের সবজির ফুলের, তুলার ও তামাকের বীজ আগামী আয়াঢ় মাসে পৌছিবে। যাঁহাদের এই সকল আৰশ্যক হইবে আমার নিকট মূল্য পাঠাইলে উপাযুক্ত সময়ে পাঠাইয়া দিব।

০০ রকমের সবজির মায় ৫ । ৬ রকমের কশির
বীজ বিট পালন, মটর, নিম ইত্যাদি, পরিমান গত
সন অপেক্ষা বেশি ৫ টাকা। ৩০ রকমের ফুলের বীজ
প্রত্যেক রকম পরিমান বেশী ৩ টাকা দিখাইলেও
তুলার বীজ অর্থাৎ লম্বা জাঁসের তুলার ১॥ সের
ছোট গলক তুলার বীজ ১ সের নানা প্রকারের ভামাকের, ৰীজ ফি কাগজ।০ আন। । ফল ও ফুল গাছ
রোপনের সমর উপস্থিত হইয়াছে। মূল্যের ভালিকা
আমার নিকট পাওয়া যার যাহার যথার্থ গাছের
আবশ্যক হইবে তাঁহাকে বিনা মূল্যে। মাগুল দিয়া
ভালিকা পাঠাইয়া দিব ।

भेरे जून। निंडा (भाषान हरिंगिशांश भेरे जून। शिरुक्षां नर्भात किन्नां।

मर्वाम

—इंश्लिए व व इ २ घटवं कनक मो वन वाज काल চতু क्रिक विख् ७ इहेट इहा थक जन जात्न व कमा मश्का ख घडेगां है लहेश मकल जार शका रानी रागान यार्ग উপস্থিত। ইহার স্বামীও এক জন আল । এই যুবতী खी এक জन मामाना वाङ्कि:क लहेश। भालाशन कर्यन। किছू দिन इड्न इंडात এक ज्ञानोत नाम जांडात स्वामी दिवराहिक स्व क्ष्या किविमा किमा क्ष्या चारत অভিযোগ করেন। ইহার আর এক ভগিনী जाপর পুরুষকে লাইয়া গাঁহ হইতে বহির্গত হন। অনে-क्तित प्यात्र श व्याद्धि (य, नर्ड अल्मिरकार्ड नामक अक जन लर्ड তাহার खोत इण्हेति एवत कथा खिनिया ভারতবর্ষ इडे (ज वा ख नम ख इहे हा। हे १ ल (७) थ जा भाग कर अन। छे পরে আমর। যে চারিটি ছুল্চরিত্র। জ্রীর কথা উল্লেখ कतिलाभ इंशांत्र मध्यिमि तां जितिहाद छे शिष्ट ह श्रेशां खीत मह्म विभिन्न इन छ। इ। जिन्न गांत मक्लिइ अथन जांवांत्र ञूर्थ मञ्चलम পরিবার লইয়া বাস করিতেছেন। স্ত্রীর চরিত্রের দোষে তাহারা স্থাজে কোন রূপ ক্ষতি-গ্ৰেন্ত হন নাই ৷

—এই বার বুঝি মাঞ্চেরবাদীরা গভাস্থ হন।
বোস্থাইবাদীরা এ দেশে ভ্রম বস্ত্র বয়নের যত্ন করিতেছেন। আবার চিনেরা সংকপ্প করিয়াছে যে, ভাহারা
কাপড়ের কল আনিবে। যখন ভারতবর্ষে কাপড়ের
কলে লাভ হইতেছে এবং উত্তম বস্ত্র প্রস্তুত হইতেছে,
ভখন আদিয়ার অনেক স্থানে যে বস্ত্রের কল সংস্থাপিত
হইবে ভাহার কোন ভূন নাই এবং চিন ও জাপানবাদীরা যে অচিরাৎ ইহাতে বিশেষ নৈপণ্ডা দেখাইবে
ভাহারও কোন সন্দেহ নাই।

— (द्री भात्र मूला करम माहि इहेश या इटिड्इ, जावात

সম্পূতি জাপানে একটা রৌপা খনি পাওয়া গিয়াছে। এখারে হাজার লোকে কাজ করিতেছে।

∠ हीन (मर्ल दो ज विद्याशी त मश्था। करम इक्ति इ**इ**-তেছে। প্রায় ১৫০০টি নগর বিদ্রোহী হইয়া উঠিয়াছে हिन (मर्टन এक ही मन्ना मांग्र इहेग्राइ। जाहां बा किवन রাজ বিজে। इद উত্তেজনা করিয়া বেড়াইতেছে। চিনের जवस्र। (मिथ्रा जागामित जा इहेट एह। हित्न इहे मिटक इरेजी প্রবল শকু। এ দিকে ইংরাজ ও দিকে क्रम। आवात जारात छेशत धरे शृश् विष्ट्रम। ज्य छे उग्न मिक इरे थावल भाकू थाकात्र निमिन हिः नत विश्व অপেক। मन्भरित अ अधिक मञ्जावन।। क्रम अ ३१वा-(जात्र) यिन छोका इन जो इ। इहेल हित्नत विश्व इहेट পারে। কিন্ত বোধ হয় ইহাদের একা হওয়ার কোন मञ्चावना नाइ। इंश्रापत्र यं किन देवब्र शाकिर्व ज्ज मिन हित्नब त्वांध इस कान विश्वम इहेरव ना **१** त्रभ आक्रमन कितिल इश्त्रां कित्न माश्यां कित-বেন এবং ইংরাজেরা আক্রমণ করিলে তাহার সাহা-যোর নিমিত্ত রশেরা অগ্রাসর হইবে।

—আমরা পূর্বে লিখিয়াছি যে, চিন দেশে আফিক্ষের আবাদ ক্রমে র্দ্ধি হইতেছে। সম্পুতি চিন
হইতে যে সমুদ্য সম্বাদ পত্র আদিয়াছে তাহাতেও
ইহার পোষকতা করিতেছে। চিন দেশের প্রধানহ
রাজ কর্মচারিরা যত্নপূব্ব ক উহা আবাদের ক্রিরেছেন। ইহাদের ইচ্ছা যে, ভির দেশ হইতে
চিন দেশে যাহাতে আফিং আমদানি না হয় এরপা
করিবেন।

—সেকলরাবাদে ইউফ নির্মিত একটা হুই তল,বারিক প্রস্তুত হইতেছিল। গ্রবর্ণমেট সহসা এই গৃহ নির্মাণ ছাগত করিরাছেন। গ্রবর্ণমেট এখন বিবেচনা করিয়া দেখিরাছেন যে, সেকলারবাদে প্রস্তুর নির্মিত রারিক প্রস্তুত না করিয়া উত্তর ত্রিকলখাড়ী নামক স্থানে অখারোহীদিগের নিমিত্ত যে ইউক নির্মিত বারিক প্রস্তুত হইতেছে সেখানে উহা প্রস্তুত করিতে হইবে। স্তুরাং সেকাল্যাদের গৃহ নির্মাণ ছগিত হইল এবং বোধ হয় এই নিমিত্ত গ্রব্ণমেণ্টের সমর্থক বিস্তুর টোকাও বায় হইয়াছে। গ্রব্ণমেণ্ট অনর্থক এই রূপ বংসরহ যে বায় করেন সে গুলি যদি এ দেশের উন্নতির নিমিত্ত বায়িত হইত, তাহা হইলে দেশের কত উপকার হইত ভাষাবলা বায় না।

—कांत्रामी वाधिक्र পणिठाविष्ठ धक वाकि मृजा कोटल एक अ भवर्गिए हे इस्ड जिन लक्ष होक। जर्भन कतिया यान। পणिहातित (कान मझन ऐत्मर्भ इंश्। নিযুক্ত হয় দাতার এ রূপ অভিপায়। তথাকার অধি-वानीशन हेश दावा (मशात्न वावमाय वानिजा निका कवा यात्र धारे ज्ञभ धक्री विमाला श्राभन कतिवात निभिन्न श्वर्गारित निक्रे छ।र्थन। कर्त्रन, किन्छ श्वर्ग-(मणे छे ज जर्थ दावा धकि कूप (वल अर्थ श्रेष्ठ कित्र।-(इन। এই রেলওয়ে ছার'ও দেশের বিশে উপকার इइंशिट्ड। এ (मर्ल अ क्रिश मान कक्षांत क्षेश नाई। इन्द्र-দিগোর বিশ্বাদ যে, পুত্র সন্তান না থাকিলে স্বর্গ হয় ना। आवात गुनलगान निशात छे छ ताथिकातीत जा जा व कान काल्विह हम न', ज्ञा दार माधा प्रवाद छे काल्य উদ্দেশ্যে প্রায় এ রূপ দান সম্ভবে না। আবার এ পর্যান্ত य छूडे अक जन मान कतिया ছिল्न जार्ग अक अभ ভস্মে ঘৃত আহতি প্রদান করা হইয়াছে। প্রেমচাদ ताश है। एन व छाका अलि घारा एन लोब क छे शकां बहे इइंड ध्वर ध्यमन कूमात ठाक्रत्व छाका छन् बात्रा छ দেশের কত মজল সাধিত হইত! প্রেমচাদ রায় চাদ यमि श्वर्यापित इए छोका छन्नि व्यर्भन ना कब्रिडन তাহা হইলে ইহার এরপ তুর্গতি হইত না। তাঁহার इंक्ट्रा हिल (य, इंड्रा खांत्रा श्राक्त (एट्लांत क्लांन छेल-কার হয় এবং ইহার এরপ অপবায় দেখিয়া তিনি মন-कुत इन, किन्छ लामत कुमांत ठोकूत , धक जन विथा। ज लाक, जिनि कि तिश जाँश जाँश छोका छिन परे तथ मान कड़िएंड जारमण कड़िशा ছिल्लन?

— এ দেশীয় লোকদিগকে অনেকে গড্ডালিকা थ्यवाह्य विलग्न जित्रकात्र करत्रन किछ शक्त व (मणी-য়েরা গডডালিকা প্রবাহ্বৎ নছে, পৃথিবীর সকল मिट्न वे अरे अर्थ शंफ फालिकां अ मल जाट्य। यञ मिन विमा। दुक्तित इंख्त विर्णाय थानित्व ७७ मिन ७३ क्रि मटलत विनाभ इहेटव ना। हेश्लट विवास विद्या म व्यव देखिया छेशाधि नदेशा कि शान्याभि छेशिष्ड इहेशा छ। भाष्ठिक अ फिमर्त्राल ७ वर्गत ज्यानक সংগ্রাম হইরাছে। গ্লাডেফন অপেক্ষাক্ত পণ্ডিত ध्वव विक किन्छ फिमदिन विक्रक । धवर जिनि जारनन य याश्व मानमिक वल जाए जाश्क जाश्क कान करमह जाशनग्र कर्ता याग्र ना। जिनि जात्नन (य, धरे वन থাকার নিমিত্ত বিসমাক এবং রশ মন্ত্রী এ রশ আধ্ধি-পতा করিতেছেন এবং যত দিন তাঁহার এই বল থাকিবে তত দিন গ্লাডেম্টন ভাহাকে কিছু করিতে পারিবেন ना। जिनि निजात धाइ गानिक वरलत छे थत निर्जत कित्रिया महावानी विक्रे तिया कि अल्लाम जाव देखिया कित्रिया (इन वात्र इंश्लिए व यादा क्षा वा विका क्षा हिड इइल। जात्नक जावित्लन (य, तूबि धरे बाँछ-काटि जाश्राक छे९ शावेन कर्द्र, किस जिन जिले टेनल्ल नाम मार्गत कूल पृष् छार प्रथा समान इहेसा वां खांत्र की छ। मर्भन कित्र छ नाशि लिन । जिनि जारनन या किन छ। इति मानिक वल थाकित छ किन छ। इति कान विश्व इइवात मङ्गावमा नाई धवर किवल धरे यानिमक वरलत निमिछ जिनि এই विशेष इरेड छेकांत्र इहेलन। भालि शिरमण्डेत माजात्रा जाहात्र माजि जाजि-क्य क्रिडि श्रां प्रिलान ना। जिनि य मिर्क ष्याञ्च विल-लिन, मकल्ल मिर्ड मिरक जा विलिया छिठिएलन। इश्लखवामीया नाना छान इहेट পूर्क छेथाधि धहरनब श्राण्याम कित्रिए हिल्लम, अथम अ (खार्ज्य गण्डि रिजनि পরিবর্ত্তন করিয়াছেন। এখন আবার এম্প্রেস छिभाधि लहेश्रा (लांदकत मध्या छे९मव श्रिया शियांदछ। यत्नव्र शिक्ति পরিবর্তন করিতে পারেন নাই, কিন্ত বোধ হয় সত্র উহ। পরিবর্ত্তিত হইবে।

—इश्लाख अ अर्शलरम जाभा त्र छेथामना मिल्दित्र সংখ্যা প্রায় ১৯হাজার হইবে। এতদ্তির দেখানে অন্তর্মপ ध्यात्र २४ होजात्र छेथागना जालग् जारह। थ छोनिएशत्र डिन्नर मण्यामात्र जाट्य। त्यथिष्ये मण्यामाद्यत मर्था इश्ल एक मर्कारिक का विषेक । वहे मन्त्रा मार्यंत्र अमार्छात्नत्र मिमिछ भावर्षिय वर्मत्र थ्रांत्र मार्ड ठाति कांनी देशका मान कित्रा थारकन किल इंशाउ मगून्य कार्या निकार इंग ना। गावर्यस्तितं मार्था जिन क्रीमा প্রভৃতি দারা বৎসর ৪ কোটা টাকা সংগৃহীত হয়। वाइरवन मिननाति भागाइंगे श्रृं वाता विखत छिभाष्क् न इइत्रा शांदक। अर्व अदम् अथादन वर्मत्र 39 क्लिकी देशका वाग इम्र। जाशक इक्रक्ष इंश्लिख जार्शन मिन जिल्ला मर्का सर्व (अर्छ ना इडेक, ज्ञान नट्ड, देश्त्रांज लाण्डित धर्मा ध्वत्रिक जार्थिका जर्थ छेथाङ (नत्र इेक्ट्रा বলবং, দেব ভাব অপেক্ষা আকুরিক ভাব তাহাদের ध्यवल, जावात्र देशलए वर्गत्र मञ्चर (लाक व्यवभारत ७ भी एक व्यान जा श करता

—तिशन्ति अव श्रीन मद्दान शिंख मात्र माना त छ मद्दा अव तिश्व इवेता हि। आगि ता नामक छा हा छ जा अव वन्य दि छे भी छ इवेता हि। हा वे छा-वा मित्र आकि है यि अव विश्वा छ छा ना दिन नवा व मात्र माना ते छ वा हा छ ते छा हा छ आदि ते है विश्वा अशादन छे शिंछ हरे ता हिन। नवा व मा हिन अशादन छा हा ते आगे छा। विश्व का हो छ हरे हु अव छो ने कि ति ता छा हो है हो ते मा छ छा ता छ छन महा छ वा कि आमित्रा हिन। हे हो ते महा छो ता छ छन महा छ वा कि आमित्रा हिन। हे हो एक मक्त महा छ छो ता छन्य वर्ष। मक्र एक छे छ्छा छ ता छा छ ह्य । छु वि छ हरे ता छो नित्रा हिन छो ता छन्य

कतिए उहिन। পरिथत मर्था नाना छान इहेट हिनि विविध উপহার প্রাপ্ত হইয়াছেন। এডেনে এক জন আরব इंशिक इंशें का भिष्ठ (भष्ठ विश्व का का का ना विश्व श्री का अवा উপহার প্রদান করেন। তিনি যে জাহাজে আরো-হণ করিয়া আগামন করিয়াছেন তাহাতে যাহারা কাজ করে ভাহাদের সকলকেই ভিনি প্রচুর পুরস্কার প্রদান कित्रशिष्ट्रम। कार्रिष्टिन व्ह मूलात अकि जिन्न तीत প্রদান করিয়াছেন। তাখার জাহাজ যে এই বন্দরে প্রবেশ করিয়াছে আর হুর্গ হইতে সন্মানস্থচক ভোপ श्रित इत्र। वन्मद्रित वांष्ठिमित्रां वांचात्र वांष्ठे देखेनि-क्त्रम পরিष्ह्म পরিধান পূক্ত কে নেপলদের বাইস कनमल (क महिंद्या भाव भाव भाव जिल्ले ज উপস্থিত হন এবং নবাৰ সাহেৰকে সঙ্গে করিয়া উপরে लहेशा जाहिरमन। जिनि यथन कूटल छेशश्चि इहेटलन তখন আবার তোপ ধ্বনি হইল। অপরাহে এখান-কার প্রধান্থ ব্যক্তি ও রাজ কর্মচারীরা ভাঁহার সজে माक्षां क्रिट वाहिएम। मात्र मानात जिल्लत मद्भ (भाभ (मथा कर्त्रन এवर जिनि ७ जांश्रांक य(थ। हिंछ मगामत करत्न। जिनि इश्ल एखत य शृंद्र অবস্থিতি করিতেছেন তাহার তিন মাসের ভাড়া ১৪ হাজার টাকা। ইহাতে ৪০ টি কুচরি আছে। যুব-রাজের সন্মানার্থে হ.গুন নগরে যে ভোজ হইবে ভাহাতে ভাহার নিমন্ত্রণ হইয়াছে। মাঞ্চেটেরের (६म्रात्र व्यव क्याम कर्ल्क विनि निमिखि इहेश। ছেন।

—लखरमत काम माजिए दिये कि कि विद्रा পানে উমত্ত হত্য়া অপরাধে এক জন বিবাহিত खीलांकरक लालिम छेलाञ्च करतन। मार्जिए हे इंश्रांक २० छोका জित्रियांना करत्रन। इंश्रंत स्वामी अहे জ রিমানার টাকা প্রদান করিয়া মাজিফেট্টকে বলে যে, দে তাহার জীর মদ পান করিয়া মাতলামি করার নিমিত্ত গাঁড তিন বৎসরে ২৫০০ টাকা দণ্ড मिशोटि । यथंन यूनद्रोटि द हिन्दू शदिन द्र धारनभ कत्रा लहेशा अपिटल जाति शालयाश छेशश्चि इश उथन लियाद्रशूल इइएउ এक জन इश्द्रांख आभाित्रां क সাवধান করিয়া এক খানি পত্র লিখেন। আমরা এই পত্রের বিষয় আর এক বার উল্লেখ করিয়া-जिलाम। পত প্রেরক আমাদিগকে সাবধান করিয়া दिन रयन, এदिन नी दिश्व। প্রাণারেও তাহাদের অভঃপুর ल्यानीत পরিবর্তন ন। করেন। তিনি লিখিয়াছিলেন (य, यमि अ हिन्सू जा छ श्रीदात श्रीत्वात धार्गाली ए কোন কোন দোষ আছে কিন্ত ইয়ার অশেষ গুণ্ত আছে। इंश्वारक्षता खीलाकरक साधीनक। मिया यश्भान-नाखिक कछ भारेट जिल्न। जिनि रेश्त ज मगाज यक्तभ বর্ণন করিয়াছেন তাহা আমরা প্রকাশ করিতে পারি না। জ্রী জাতিকে হিন্দুরা ভগাবতী বলিয়া উপাসনা করেন, স্মতরাং জ্রী জাতির কোন রূপ কুৎসা ঘোষনা इइटल हिन्दू इन दश (वनना लादा।

লেপেরারে এক জন ডাক্তার সাহেব সন্ত্রীক একটা বাটাতে অবস্থিতি করিতেন। সহসা এই বাটাতে পতিত হয়। পতিত হওয়ার সময় ডাক্তারের জ্রী আহত হন। ডাক্তার সাহেব এই নিমিত্ত গৃহ স্বামীর নামে ৯৮৫০ টাকা ক্ষতি পূরণের দাবি দিয়া অভিযোগ করেন ও তিনি ৮২০০ টাকা ডিক্রি পাইয়াছেন। ডাক্তার কি হিসাবে গৃহ স্বামীর নিকট ৯৮৫০ টাকা পাওনা করিলেন তাহা প্রকাশ নাই। গৃহ ভগ্ন হইয়া কি কি বিষয়ে তিনি ক্ষতিপ্রস্থ হন এবং তাহার মূলাই বা তিনি কিরপে নির্দারণ করেন এটি অবগত হইবার নিমিত্ত আমাদের অতিশয় কৌতুক হইতেছে। আমাদদের পেসোয়ারের কোন প্রাহক যদি আমাদিনের এই কৌতুক তৃপ্তি করিতে পারেন তাহা হইলে আমরা তাহার নিকট নিতান্ত বাধিত হইব।

— আমাদের পাঠকেরা শুনিরা সন্তন্ত হইবেন যে, নিগত না হয় এরপ তৈল প্রদীপে ব্যবহার করা বারানদী মহারাজার মৃত্যুর সমাদ যে রাজু হয় তাহা কর্ত্ব্য নহে। ইহার বিবেচনার ১০০ শত ডিক্রি উত্তর্জ সম্পূর্ণ অমূলক। বারানদীর মহারাজা এক জন হইবার পুর্বের যে তৈল হইতে দাহ্য বাষ্পা নিগত হয়

বিখ্যাত লোক। তাহার মৃত্যু হইলে এ দেশ বিশেষ ক্তিগ্রন্থ হইত না।

(গত ১লা জানুয়ারিতে বেলাল, বেহার ও छिष्याग्र २७१ জन मिनिन मत्दर् के कार्या कित्रा-छित्नम। इंश्रापत मर्था ८ जन माज जिल्लीय। व्यथ्त मकल हे हैश्द्रां छ उ विद्नानी या। वाक्लांत मिवि-लियारिनत मरधा यम 8 जन এ (मनीय कार्या कतिराज्य क, व्यवश् ममञ्ज इश्क्रांक व्यधिकृ जावज्य व्यव्य वृत्य । ११ জन এ দেশীয় সিবিলিয়ান আছেন এবং ইহারই নিমিত্ত श्वर्वायणे कृष्ये जिञ्ज इहेत्राष्ट्रम। मिविल मत्रविम जित्नी यिक्टिश्व जात रेशांज खात्रण कति इरिय ना । इंश्त्रा जित्रा नाना छेलाएत अपिलांत अर्थलायन कितिएक-ছেন কিন্তু রাজ কার্যা छ लि इইতে আমাদিগকে বঞ্চিত क्रिय़ा (यक्तर्थ व्यक्तिवाद क्रिय्टिह्न এक्तर्थ (याध इय व्याद किছू (७३ किति (७६६ न न।) वाशिका वादमात्र कर्छ क इर्ताष्ड्या अ दिन भौग्रिमिशं क जिल्ला शित्रिमार्थ नित्र করিয়াছেন কিন্তু তাহাতে আমরা প্রকৃত তাহাদের অপেকা ছোট হই নাই। যত্ত্রের দারা,বস্ত্র বয়ন করিয়া তাতির অন ধংশ করা যদিও নিতান্ত স্বিচার নহৈ, কিন্তু ইছাতে তত অন্যায়াচরণ দেখা যায় ন।। যাহারা विमा। युद्धिত উৎকর্ষ করিয়াছে তাহারা নির্বোধ ও मृ एथं त छे शत कर्छ, व कितिल मि निका ख व्यक्तित विन्ता। বোধ হয় ना। किन्छ शवर्गमणे नाना ज्ञा भाषी कि जिया। দেখিয়াছেন যে, সকল রূপ রাজ কার্যোর নিমিত্ত এদেশীয়েরা উপযুক্ত এবং যত ইহারা এই পরীক্ষায় উত্তীর্ণ হইতেছেন তত রাজকার্য্য প্রবেশের দ্বার উন্মো-চন ना करिया शवर्षिण छेश जागामित छाडि जावद्याश्व किति एक । वाकालाश (य २७१ जन मिविलिशान काज कतिएएहन, इंश्रा जलून जिल्लीय प्रे महज পরि-वादितत जान अश्यां कितिए किन। अहे जार्थ छिनित छैथत व्यागादित याया मानि व्याद्य धवश खाशात्र। य मगूमग्र कार्या नियुक्त रहेशा धहे वार्थ छाल भाषण कतिरक्रिक উাহার উপযুক্ত লোক এখানে হ্যুন কপ্পে ২৬৭ জন वार्ष्ट्रन। এই २७१ जन अप्तिभित्र जन लहेशा ए जुड़ कित्रिट्टिष्ट्न, माम मामी जाभ भाक्षे मनत्रम शृश् छेख्य পরিচ্ছদ ও উত্তম আধারীয় প্রভৃতি দারা স্বর্গ স্থা ভোগ করিতেছেন অথচ এদেশের লোক বিদ্যা বুদ্ধি প্রভৃতিতে ক্ষমতাপন্ন হইয়া অনাভাবে নানাবিধ কট পোপ্ত र्रेडिह। পশ্দের অয়াভাব হইলে উত্তেজিত হয়। णदन्नत णदन्नयर्ग मिक विमिक शंभन करत्र, विशम वाशा लका करत ना, किछ मनुया जािजत श्राक्ति इश्रा विश्री । इंश्रापत यङ जातात जा जावाव इस इंश्राप ङ निर्जी व निरस्क इहेश। श्रेष । ध्राप्त लादिन এরাণ অন্ন কফ হইয়াছে যে যদি ইহারা পশুর স্বভাব প্রাপ্ত হইত তাহা ইইলে এত দিন এদেশীয়দিগকে সমাজ

वन्नत्न द्रांथा कर्ठिन इइंग्रा छेठिछ। —मान्याज भान किरदामाइन टिन मयद्या এই ज्ञा लिখिशार्ष्ट्न। कित्रमाइन टेंन पूरे तकम जार्ष्ट्र। जक तकम टिज्ल कान का विशापत मुख्यानमा नाई, जात এক রূপ হৈল তাতি ভয়ানক। বাক্দে যেরূপ এক জ্বালিন্স অগ্নি পতিত হইলে সর্বানাশের উৎপত্তি হয় इश् (मह क्रिं। ज्ञाल कित्रमाइन टिज्लित क्रिंन क्रिं वर्ण नाई धवर टेजल्ब निष्म कान क्रम अमार्थ श्रांचिक ইয় न।। এত দ্বির উৎকৃষ্ট কিরসাইন তৈলের আর একটি छन जात्ह धन् धर छन्डि मस्त ध्रभान, किछ देश পরীক্ষা করা ভারি কঠিন। উত্তম হৈতল এক শত ডিগ্রি উত্তপ্ত হইলে তাহা হইতে কোন রূপ দাহা ৰাজ্প নিশ্তি इत्र ना। जाशक, को टेंडल यमि ৯० ডिগ্রি উত্তপ্ত इत्र जाहा-इरेल छेरा इरेड धक जाश गाळा निर्शा खर् बाष्ट्रा कान शिव्दक जिल्ल ज्यानि जानित रिजन জुलिय़ों छेटि। गांख्यों ज (मल लिथिय़ों इन (य, जोत्र वर्ष অভিশয় ऐसा, বিশেষত এখন ভারি ऐसा इहेंग्रा ऐहि-शांहि। धशन य रिजन ३३० फिथि छेख्य कि विल वांच्ल निगंड ना इश धक्रिश देखल थिनीदिश वावद्यंत क्या कर्जवा नरह। इंश्व विरव्हनात ३०० भंड फिक्ति छेन्छ

छोद्दा छनम জाত করিয়া রাখিলে বিপদ হইবার मखोवना। याश्वा किर्तामाईन टिल्ल वावश्व कर्वन তাহাদিগকে তিনি পরামর্শ দিয়াছেন যে, তাহারা যেন কোন প্রাসিদ্ধ বণি:কর নিকট হইতে তৈল ক্রের করেন। जिश इहेटल विगिदकत्र। তাহাদিগকে কখন যাহাতে विवाम मञ्जव जार्ष्ट এ तथि जिल दिक्य कि ति ना। (वाध इश इ इ । कि कू जिथिक मूला इ हे (व कि छ कि ता।-ষ্মজন ও অভ্যাগত ব্যক্তি প্রভৃতিকে দগ্ধ করিয়। হত্যা

অপেক। বোধ হয় যাহাতে কোন বিয়ের সম্ভাবনা দিক্ হইতে মৃত্নন বায়, বহিতে লাগিল। বায় मार विधिक मूटला अ कं रे टिंग क्या करा कर्छगा। लाक नाना (मण विषम इहेट नाना विध खावात भिला इहेटल मिट्यंत विख्य छेथकात हरेवात मञ्जावना। व्यागता धरे निमित् ध मप्ता श्रमः श्रमः श्रमः श्रमि ञत्रताथ कतिया थाकि। ध (मर्भ दमना जरनक मिन অবধি হইয়া আসিতেছে। তবে পারিস, ফিলাডেল-किया, প্রভৃতি স্থানে যে প্রণালীতে মেলা হয় এ দেশে নৌকা পরিত্যাগ করিলাম। रमज़े प्रात्म र श न।। । । पिर्म वथन य ममून । प्रात्म। व्यापित प्राप्ति । प्राप्ति मखन আছে তাহা পুর্বে হিন্দু রাজারা স্থাপন করেন। ভাঁহারা কতক অর্থোপাজ্জ নের উদ্দেশ্যে এরপ মেলা নাবিকদিগের ভয়জনক আত্মনাদ ভিন্ন কিছুই আমা-**श्रीन करतन किस धक्र भ मिलात अधिकाश्म कान किता कि कर्न कर्न कर क्राय अविधे इहेल ना । आमानिरागत** क्रिश धर्म छे ९ मत छे शन कि मा श्राणिक इहे मा हिला (को को किशो क्रिशिय क्रिशिय क्रिशे कि कर को मिर्कि के वा या है, श्वाति श्वाति धर्म छे:क्त्भा नाना (पन विद्वार इहेट डाहा निर्ग किविछ जामपर्व इहेग्री, त्यार्जि महिज नाना (लारकत ममागम इहेज, এवर मिथान नाना जिनिएंज २ याहरेजिङ, अमन ममग जर्गनीश्वरतत क्रियांज हे (मन विद्मन इरेड नामां क्र भाग जाताव जाग- इडेक वा जागामित्रां बाजा धरे भाभ भृशिवी भरि-मानि इडेउ। कम य कार्रावे इडात अनूर्यान इडेक, जारा कतिए अनिष्ठ क विना हे इडेक आगता यमूनात ইছা দ্বারা যে দেশের বিশেষ উপকার হইত এবং জল হইতে কিনারায় উঠিয়া একটা রক্ষের আগ্রয় লইলাম। পুখনও উপকার হয় তাহার কোন সন্দেহ নাই কিন্তু তখন র্ফি আসিল এবং আমাদিগকে তাহার বিক্রম এরপ অনুষ্ঠানে জাতি সাধারণের উপকার হইতে দেখাইবার নিমিত্ত ভয়ানক চীৎকার শব্দে গজ্প পারে না। পারিদে যে মেলা হইবে তাহাতে পৃথি-बीत मखं ज २६८७ नानाविध शंगा खःवात जामनानि इरेरव। ध्वर अहे छेशन एक छा भरमा अ व्यर्शिशार्जन कार्यात्र कर छेशकां ब इहेर्न, भिल्लां छ कांक कार्यात्र छ क्छ बीत्रिक माधिक इरेरव काश वला यात्र ना ववर वरे अगूमय खवा পातिरमत (मनाट छे पछि इ इहेल यञ्च कित्रश व्याभिनां मिति व्यादश छेत्र कित्रियन। इश्रांख कृष्मम जावशं इश्रांबन य शृथिवीत कान् श्रांति कि कि छेखम अवा छे९ शन्न इय, कृष्न्म अना प्रम তাপেকা কিলে তান আছে এবং কোন কোন পণা खवा (मथारन छे९क्रियेक्सर्भ छे९भन्न इड्ना थारक। ध्कर्भ जूलना कित्रिश्चा वार्यभाग्न मञ्चलक कृषन एमत স্ত্রে অপর অপর দেশের কি রূপ তারত্যা ইহা অব-क्षेत्र कहोत्न कार्यानियान जोहांत्र थाजिनियात्नत यज् कदिएक भी तिर्वन। जाभारित (मर्ल यमि अहे क्रश रमला मार्य मार्यः इय छात्रा इहेल ज्रामर्थ वाशिषा न्तावमार्यत्र विख्य छे शकार्त्वत्र मखावन। धवर यञ निन ध-एम भारत वर्ग विका वावमा दिश्व छे भका ब ना इहे एउ ए उर्ज मिन मिट्यंत्र व्यर्थ इक्ति इडेट्ड्ड् ना। श्वर्ण्यके वाणिजा - वावमा(शत षात्रा वरमत वरमत विखत विका छेथां ज्ज न क्रियन, ज्युड्यार ऐश्वर्ष छेश्कर्य माधान्य निमिन्न किष्ट वर्थ दाग्र कर्ना व्यक्ति कर्न्य। व्यक्ति वर्गित विश्वाम (य, श्रविधिक्ते अहे छेट्म्ट्ला अक छन वाश कब्रिट्न श्विष्ठन छेलाड्डन क्रिट्रन। (वाध इत्र श्वर्गर्णेद छत्र भाष्ट्र अक्रथ (मल्भ कि ब्रिल्ल इंश्ल एउन वाशिष्ठा वावमान्नी मन्श्रामार्य जार्थाभाष्क दनव क्लान क्रथ विश् वय- धरे जिए जिस्सी धरमण्येत धक्र प्रांत जिसे

ক্রিতেছেন।

প্রেরিত।

इं ि विश्व ।

मल्यामक महानां , প্ৰায় তুই সপ্তাহ গত হইল विका वागता जीर्थश्राहेनार्थ, वाही इहेर दिश्रंड इहेश्रा, स्र्वलाखित जनिविलाम, जक थानि कूप जत्नी जि वादताइन भूक क, यमूनात वान उ व्याख जान तानित डे পর দিয়া ভাগিতে ২ আগিতেছি, এমন সময় উত্তর विष्टिष्ठ (मिथिया, मोजीमिशांत आंत आंत आंगलमत मीमा — वाशिका रावमारात्र छे९कर्ष माधरनत निधित मकल तिश्लि ना। हिलाहिल विरवहना ना कित्रा, निर्वाध श्वाधीन ও मंडा (मर्ग (मग) इहेश थारक। এই छेथ- मांजीता क्रिनका करत विद्याम न अग्रार्थ, किर्न পाल ऐठाইয়া আভিহারিণী তামাকু খাইতে ২ যেমন একটি মেলা ছইয়া গিয়াছে। আবার ১৮৭৮খঃ অবে করিয়া উঠিল, অমনি বায় কিছু প্রবল তরে বহিতে পারিদ নগরে এই রূপ একটী মেল। হইবে এরূপ লাগিল। মাঝিদিগের আগনন্দ ক্রমেই রুদ্ধি পাইতে व्यारशिक्षन इहेट्डिश शांत्रिरमत्र (मलांटि প্রায় ৫० लक्ष लांशिलां किन्छ मिहे व्यमीम व्यानम नित्रान्तम शतिशे उ हैको वात रहेरव। जामादित वाध रत्न जात्रवार्थ जन्म इहेन;—हिंग खनन वाष् छेकिन, यमूनांत वक्षेश्चरन वामः था जतम माला (मथा मिल धवर (मिथिट २ मर। काला इल शूर्यक आभामिशःक को माइड नाहाइड लाशिन। আমাদিগের অস্তিম সময়ের কাতরোজি अ गाविषि पिरात (ठकी मकलि विकन इहेल। आगता

> মেঘে আচ্ছন হইল। তরজের কোলাহল শব্দ ও क्रिटिश वार्ष्त्र महिक मल्यू म जारख क्रिल। इःश्व विषय এই यে, দर्भागित्यः यत पर्भाग गाजि त्र इंड इल्या उ युक्त एक जारो इहेल (मिष्टि जार्शनारक जानाहर जारिन लागना। जाजू ভবে বোধ হয় শে, इसिंह পরাভব श्रीकांत कतिल। (य ভাবেই হউক, ঝড় ও রুফি বিশ্রা-गार्थ (क काथाय शंयन कतिल, किছूरे (मिथि जिथारे-लाग ना।

क छ अधि था गिल পর প্রকৃতি গন্তীর মূর্তি ধারণ क्रिल। जाकारण नक्व (पर्थ। फिला। जर्थन जाभत निक छेष्ट कोन छोट्य धक छी छ प्र लोक व वो छै एन-श्रिक इहेश।, छाँ हात निक छे आभा मिर्गित ज्वा श्रीत विषश व्यानू श्वर्षक वर्णना क्रवाटक, किनि व्यामामिर्धित इः एथ प्रशिष्ठ इहेशा, প্रथमण्डः कर्यक थानि পরিধানের নিমিত্ত वञ्ज जानिया पिटलन, পরে আছারের জন্ম নানা প্রকার অনুরোধ করিতে লাগিলেন কিন্তু মন অভ্যন্ত অসুস্থ থাকাতে আমরা সে রাত্রে কিছুই খাইলাম না।

পর দিবস প্রোতে শ্যা হইতে উঠিয়া লোক ष्वांत्रांत्र ञादनक ञातू मञ्जान कित्रिया (नोका छ मार्तिपित्रात्र कान ऐक्निम शाहलाम गा। जात्नक निवम इहेल काली-घारित काली मर्भन कतिवात देण्हा ছिल এवर जामा-मिर्शित ममछ धन जल मध इहेश। मर्ज य। ছिल তদারায় खेळ कार्या जानाशारम निका । इहेट शाहित बिरव-চনায় यथ। সময়ে আহারাদি সমাপন করিয়া, গোয়াল-नट्नित रिंगटन दोष्णीय भक्ति (ताइन शूर्वक मायशकोटन নির্বি, ম কলিকাতার আসিলাম।

ज्याःमणीय जाधानिक किवकूल जिलक छानीज धक थानि कार्या পড়িয়াছি যে, বিটানের শেকালী মহিলাগণ शुक्ट्यत महहती अवश लीलाट्यलाट्य ज्ञादाह्य शुक्षक मार्टिश ज्यमन कित्रिशा थारक। शंज वरमञ् এक थानि मश्वाम शद्ब शिष्ट्रशाष्ट्रिमाम दय, व्यादमित्रकाश

ण गा विष्ठा नित कर्क। इहेट ए । १९ उथाकात महिला-গণ লেখা পড়া শিখিয়া এত দূর উন্নতি করিয়াছে যে তাহারা রাজ কার্য্যের ভার গ্রহণ পুষ্প ক পুরুষ অপেক্ষা छेक कार्या भंज छात्। छे९क्स क्रिश किया । किया । क्रिक क्रिक छ এবং আরও পড়িয়াছি যে তথাকার এক সম্প্রাদায়ের विञ्यो महिलां शं श्रक्षिमिशं कि विशं कि वा তি षिषश कि छू रे ठिक कि ति शो छे ठि एक शो ति एक स् ।। इरे धक थोनि সংস্কৃত প্রান্ত পড়ে বোধ হয়, পুরাকালে वागानिशांत (नटमंत खोल्गिकनिशांत किश्र शित्रिगांत याधीनज। हिल, किन्छ এक्षन (मही लाभ भारेबार्ड, शिक्टिक किलिको छोत्र कि इ.हे पिथिए शिश्लाम ना। धारक वाक्षां नित्र (मर्श छोएं जावां त्र शूर्य (मर्भ जिन्न-शिक्ति, देक्कामक काना खरत याहरक शांति ना। जरब তीर्थ श्वारत यां अशांश (कांन वांधा नांरे। (म निवम कांनी घां छे शिया कि मिश्राष्ट्रि, ब्ह्नून;—

शं ७ २० देक्छ। मन्नारंत शंत्र आंभत्र कालियां दित कालि पर्णनाजिलाय, कालीय मन्पिय मिन व मिन व श्रीकरण রোহ হওয়াতে মন্দিরে প্রবেশ করিবার কোন উপায় न। (मिशिशा, व्याक्षर्भन्न धक शार्ट्स माड्या मार्क मणलीत माधा यादाता काली मर्गना खिथारम आमिमा ছিল তাহারা কোন প্রকারে স্ব স্ব কার্যোদ্ধার করিয়া (शन। এक्षनकांत्र नवा मन्त्रीमार्शत कर्यक्री वांत् व्यागिया ছिल्निन, इंश्रामिर्गित श्राभान छ मिना व्यापान । প্রথমতঃ ইহার। কালী দর্শনাভিলাষিণী অন্তান্ত রমণী-গণের উপর ভয়ানক অত্যাচার আরম্ভ করিলেন, পরে, আমার দিকেও সভ্য নয়নে ভাকাইলেন কিন্ত তাহাদের তাকনই কেবল সার হইল ওখানিক উচ্চ হাসি হাসিয়া চলিয়া গেলেন।

मिरे मगरग्र कथा गर्म रहेरल अर्थनङ मर्खाष्ट्र भंतीत (ब्रामाधिक इत, इ मत्र विमीर्ग इत व्यवश এक मण्डित তরেও আগর কাপুরুষ ভারত সন্তানদিগের मूर्थावलाकन क्रिट्ड इेच्छ। क्रित्न ना। जामि मिवा एएक मिथिए श्री इर जिहि थ है श्री का बार्जिक वार्जित दश्का अक कालीन (लाभ ना इहेल, कथनहे खांद्र छत स्वाधीनडा स्वा देन इस्त ना ज्वर जाना खो जाडिक कछ अ निवाद । इहरव ना ।

ध्यम জिखामा कबि, जामामि:शंत छे शंत जाशन-(मत्र এত जाणात्र जाठित्र (कन? एन थून, जार्थनाएन त ভয়ে আমরা বার মাস অন্ধকুপে লুকাইয়া থাকি। যখন প্রাণ কঠাগত হয় তখনই কেবল নিশ্বাস ফেলি-वात्र निमित्न अकिंग वात्र मूथ वाश्ति कति, किन्ध मूथ वाश्ति क्तिरल हे लाशि প्রकात পाই। याश्ता जाि नम क्षं ५ वर्मत श्राकृतां चेकत्रावित्र महिङ श्रीमा इंगिरिङ न्धिक न्याहित्क, यान. म । जूक। माथा स করিয়া বহন করিতেছেন ভারা কি না আবার অবলা আগ্রহীনা স্ত্রী জাতির উপর অত্যাচার कर्रम। ভারতবর্ঘে তো এখনও পাটের চাষ যায় নাই?

मन्नामक मश्रागंत्र, छेनेमश्रांत काल जांत ब्रेगी कथा विनशा निवछ इहेव; (5) वर्षाकारल यसूना ननी जारनक ट्लांक वरमत्र छे भारा छार्व यगूनांत जटला ए। দিয়া যাবজী।নের তরে নিদ্রা যান। অতএব कर्ज् शक्षितिशंत अ वियः त्र विदर्भय मृधि (मछत्रा कर्छवा। (२)२। ७ तर्मत इहेल जात्रकश्रत कि छन्ना विना इरेश हिल, जारा (वाथ रश गक लाबरे आवल जारह । कानीघाडे यादा (पिथिलांग, डाइंड वड़ कम नग्र। याँ श्वा जलील श्वकानि छेठ। इंश नियात निया नाडा कर्त्रन डाँश्राम्त्र व विषय मृश्चित्राथ। कर्छवा। जाशनि इय (ङ। जागारक यूथवा विनया जान कविरवन। जानिन याचे गत्न कक्न जानि काली कनम এक कब्रिड क्यानि जाई अ हि जि नि जि था ठाई लाग कि ख याता (नशा शङ्भ जारन ना जात्री मत्नत्र जाश्वरन जिल्हा महत्र। क्लिकाठा, कालीघाउँ वाशनांत व्यक्ताठा । १२ देनाछ।।

मा उड़ान श्राग।।

মহাশয়,

সাঁওতাল পরগণা একটা সাধারণ আইন বহিত্ত প্রাদেশ, অধিকন্ত ইহার অধিবাসীগণ নিরক্ষর ও আদিনাবস্থাপর, অভএব এ স্থানে হাকিমগণের কি প্রকার প্রান্থভাব তাহা সকলেই অনুভব করিতে পারেন ও তদ্বির্ধরে অধিক বাক্য বায় করা অনাবশাক। বোধ হয় ইহাই বলিলে যথেষ্ট হইবে বে, তাহারা জানেন আমরা এ স্থানের হর্তা কর্তা ও বিধাতা এবং অধিবাসীগণ জানে যে তাহারাই ব্রহ্মা, বিষ্ণু ও মহেশ্বব। তাহারা ইচ্ছা করিলে স্থান্টি, পালন ও সংহার সকলি করিতে পারেন, এবং তাহাদেরই ইচ্ছামুসারে আমাদের স্থ্য ও হঃশ্ব। এমত স্থানে হাকিমগণের কি প্রকার ব্যবহার করা উচিত আর কি প্রকারেই ব্যবহার করিয়া থাকেন

তাহা সহজেই অনুভূত হইতে পারিবে। जिल्ला मिवम शंक इहेन ध स्थानित खर्शके माजिए हैं है সাহেব আদেশ প্রচার করিয়াছেন যে, তুমকা সহর মধ্যে (कह थए मिग्रा घत ছाउग्राहेट शाहरव ना वर्षा मकलटकई छोडेल मिया घत्र ছाउम्राइटिं इहेरव। य मग्न এই जारिमम প্राचात হয় उৎপূর্কে সকলেই সাপন जाशन गृहष्टामताश्रुक थड़ वांग প্रভৃতি खवा जाह-त्रण कित्रशाष्ट्रिल, मिर गमूनश किनिय नक्षे रहेरव। आवार अयङ जामगर्य छे। इल ७ उड्ड श्युक जनाना मामधी व्यारत्राक्षन ७ टिन्नानि कित्रिङ इहेल कोहात्र वान व्यार्थिका वाधिक बाग्र इहेरव ध्वरं कां हांत्र वा यथा जामरत हो हेल मित्रा शृङ्ख्यामरन या शित्रगारन वात्र इत जांका जालका अ8 छन जिंधक वास क्रेट्र पिथिया अक्टल छेक मार्थि वार्षित्र निक्रे विनौज्जात्व छेक थकांत्र ७ जनाना जिल्लां विश जशित्रशंग जलूविश खामर्गन कति शा थार्थना करत य जाशामिशक ध वरमत ञावकां न मिटि ञाञा इय, ञांभोरी वरमत यथा मगरय टोइमामि जार्याजन कित्रा। मकल्वरे जाशनर श्र है। इल मित्राई व्योक्शमन कित्रदि , किन्छ তोश्टि कर्निशंड ना कित्रिया (य प्रदे धक वाकि देकि शूर्य दे थए मिया घत आक्छामन क्रिड आंत्र क्रियां हिन डांश्रीमिश्रीक जाशन जाशन घत इहेट रूउन थड़ डेठाहेट जारिन छेक जारिमम প্रजिभानन करत्र नारे দেখিয়া তাহার नारम ভারতবর্ষীয় দণ্ডবিধি আইনের ১৮৮ ধারা অনুসারে চাर्चा वानिया जाशारक ॥० वाना वर्ष मर्ण मिछि उ कदबन। जारात प्रे जिन मिवम शदब এখान थक जी थए ऐ छित्र। शिल किछ मार्ट्य वार्ष्ट्रव्र छन्। १० প্রতিজ্ঞা কিছুতেই আলোড়িত হইল না, পরস্ত অধিকতর मृत्वत इइटि लाशिल দिथिया जल्लात्ति इङ्गारी वामनाशन जाव छेमात हिन्छ छिश्री किमिमनात किछ जाशाद्य जामानू जाश कम थाथ र म ना रे जाशीर एउथ्री किंगिणनांत्र मार्टिव वाश्वं व्यामि ध विषया किছ श्विटिक हार्डि ना" विलिया आदिमन शेख आशिन क्कूम निशिवक कर्त्रम। श्राम्श्रत श्रिननाम क्षि किनम বাত হইল তাহারা ভয়ে বাাকুল চিত্তে সাঁওতাল প্রগণার অতি উচ্চতম আদালত ক্মিদনার সাহেবের निकडे जाशनादमंत्र इः थत्रव देश्यिक कतित्राद्ध किन्छ धक्तन शर्यास जाशांता (कान कल धांध इत नारे। हेडावमद्र खद्राष्टे माखिएडें जाएहर राष्ट्र वाष्ट्र वार्थन विकाम প্रकाम कितिए ज कि करतन नाई। 018 मिनम शंख रहेल जिनि এक वाजिएक वाभाव छकूम वाभाव कित्रमा 'खानीदित कठकछालि च्डन थड़ ছाणाइमार्ड बलिया मछविधि व्याइटमंत्र ३৮৮ धाराचूमादब ६ छाका व्यर्थ मण्ड किया वर्थ मण्ड ना मिट्ड भातित्व धक मश्राह कात्रा मण्ड मिछिड कित्रियाद्वा । उद्धिय मगर्य जयदश वाष्ट्रांत मध्या व्याजिशा ' ज्यि श्रीयादा छ्कूम नाहि गान जा दश्य, जाराना घत द्यां ए दिया है जानि ज्ञान

প্রকার ত্রুম পাচাইতেছেন ও কোন ২ ঘর নিজে ছাড়া-ইয়া দিতেছেন।

मन्भामक यश्भात, উপরোক্ত রক্তান্তটী পাঠ করিয়া বোধ হল আপনার পাঠকবর্গ এ স্থানের হাকিমগবের তাহা বিবেচন। করিতে পারিবেন কিন্ত একটি বিষয়ে डाँ शिमिशिक मडकं कित्रश (मड्रश व्यावनास्क (वाध इहेट एहा अहे । माधातन वाहन विष्ठ ए ए न विलिश डिंशिश्री (यन अगठ मत्न ना कर्त्रन (य अश्रीत धमन (कान विश्निष जाईन প্রচলিত থাকিবে ষাহাতে श्किमशं विकास विकास कार्या कित्रिक कम्म वा व्यक्ष इहेश्राट्ड। जात यनि (क्ड এ প্রকার তক করেন যে है। इस मिय़। घत्र इं । अर्थित व्यक्ति व्यक्ति व्यक्ति ना व्यव्यव वामन्माशादवंत मङ्गल माधन छाग्र হাকিমগণ এ প্রকার वाहेनामझड कार्या कदिएड्डन डाहाएड वाशाउडः किছू क्वि इहेल खिवा खि जानक मझल इहेर व जाहा इहेटल जिनि এक वांत अगज जामगर्य छोहेल मिशा घत ছাওয়ানির পক্ষে কত প্রকার অসুবিধা মনে করিয়া (मथून। প্রথমতঃ খড় দিয়া ছাওয়াইবার জতা যে ভাবে চাল প্রস্তুত হয় তাহাতে টাইল দেওয়া চলে না সূতরাং দকল ঘরেরই দেওয়াল গুলি কিয়ৎ পরিমাণে ভাঙ্গিয়া ভূতন দেওয়াল দিতে হইবে, অপেকান্তত শক্ত 3813৫ শত করিয়া পাওয়া যায় তাহা ৫1৬ শত করিয়া পাওয়া যাইবে না। দ্বিতীয়তঃ এখানে কোন লোকেরই এकाधिक वाम शृंश नाई, अक मगरत्र जात्नक देविल नित्री धत्र जांक्लां पन जांत्रख कतित्व তां हा पिराक जांक्री हैं गां গৃহ অভাবে সপরিবারে যার পর নাই কট পাইতে इइर्व। जृजीयुक्तः वर्षाकाल छेशश्चिक, देकि मस्यादे এখানে 18 मिनम इसि इहेरा। शिराह उ उज्जना कड लाक कड़रे कछ भारेशाएए। यमि डार्शिमगरक दोरेल मिश्रो घत्र ছाওয়१३८७ হয় তাহা হইলে আর তুই মাস कान जाशामिशक जारशकांक्र (वभी करो मश कतिएक इहेर्व। এই প্রাকার আরেও অনেক হংস্বিধা इहेवात मञ्जाबना। वाङ्ला (वार्ध लिখिতে পातिलाम ना। ভরদাকরি যে কয়েকটি দেখান গেল তাহাতেই তা किंक পाঠक निवस्य इहेरवन छ थ वश्मव छोईल मिश्रा घत्र आंक्छामन जारमण य निञां छ जनाग्र जारा वृत्विद् शांत्रिद्वन।

जरिनक शिक।

मात्रिजिलिश।

गश्राणंश, जामा कर्यक मिवम इट्रेड मात्रिकिलिक অভিশয় ওলাউঠার প্রাত্তাব হইয়াছে। এখানকার ज्यागा महानु एउ पूरी किमिन नात महामहा विद्यांच यञ्च করিয়াও পীড়ার প্রবল প্রতাপ ছাস করিতে পারি-তেছেন না। এমত সময়ে দারজিলিং পাহাতে व्यद्शांति इग्नि इग्न, किन्छ ध वर्भन ध श्रांत धक मिन निष्ठ इरेलन। উত্তমরূপে রুফি হয় নাই। জল কফের এক শেষ इइग्नाहि। व्यथन व्यर्ग कीन्ना व कान व जान हेल्ल হইয়াছে যে পূর্বের মত দিবা দ্বিপ্রহরে আর গারম প্রথমে চা বাগিচা হইতে আরম্ভ হইয়া সহর পর্যান্ত পরিব্যাপ্ত হইয়াছে। কখন কাহাকে করাল কবলে कविनि क तत्रन थहे जरत रहा है नर्ज मारहव मरहा मग्र প্রভৃতি আপামর সাধারণ সকলেই ব্যতিব্যস্ত। প্রকৃত कात्रन (वांध इय ७३ (य, ७ इन जाि महीर्न जाश्राद कूश मम्भ श्वान अमी व वाम शृश्रं ज्ञा इह-

সেই হেতু প্রথমা যে, যখন ছোট লর্ড প্রভৃতি
মহোদয়দিগকে এ স্থানে ৬। ৭ মাস থাকিতে হইবে
তখন তাহাদিগের অধীনস্থ কর্মচারী এ অপরাপর
কর্মচারীদিগের নিমিত্ত এরপ একটা স্থান করিয়া দেওয়া
আবশাক যে তথায় তাহারা নিক্দেগে ও স্কৃত্ব শরীরে

কাল যাপন করিতে পারে, তাহা হইলে বোধ হয় এ রূপ কোন পীড়াই ভীষণ মূর্ত্তি ধারণ করিয়া অকালে মনুষ্য জীবন নট করিতে পারিবে না । মিউ নিসিপালিটী, নাচ গৃহ প্রভৃতি প্রস্তুত করিতে মুক্ত হত্তে এত অর্থ বায় করিতেহেন, কিন্তু দরিদ্র নেটিব ক্লাই-দিগের প্রতি একবার ও দৃষ্টিপাত করেন না।

প্রত্যতর।

विशंज ऽ७३ देक्रिकां बैं। ने स्थाक्तिज थरे

উত্তর।

কেবল ফরাল সব রেজফারী আফিসে নছে, রেজফারী আফিস মাত্রেই এডভালোরেম ও কপিরিং ফিস
দিতে হয়। এডভালোরেম ও কপিরিং ফিসের প্রভেদ
এই যে, যত টাকার দলিল, সেই টাকার উপর যে ফিস
লাগে তাহাকে এডভালোরেম, ও রেজিফার বহী
অর্থাৎ থাহাতে দলিল নকল হয় তাহার প্রত্যেক পৃষ্ঠার
৩০০ তিন শত কথা লিখিবার নিয়ম, সেই রূপ হুই
পৃষ্ঠার অর্থাৎ ৬০০ শত কথার অতিরিক্ত প্রভ্যেক ৩০০
শত কথার চারি আনা হিসাবে ফিস দিতে হয়, সেই
রূপ কিসকে কপিরিং ফিস কহে।

वाकिश्रत। जीगन्न । जिमान मूर्थाशाशाशा

মহারাণীর মূতন উপাধি ও ইণ্ডিয়ান লীগ।
(এডুকেশন গেজেট হইতে উদ্ধৃত।)

সচরাচর এ পর্যান্ত কলিকাতার রটিশ ইতিয়ান এদোগিয়ে সনই দেশীয় জন সাধারণের প্রতিনিধিস্বরপ इइत्र। जामिः छिहिलन। -किछ এवात इछित्रान लीग छे প্রতিনিধিতে ব্রতী হইয়া মহারাজীকে অভিনন্দন প্র श्रामारमञ्ज जानूकाम कित्रशाष्ट्रम। शंज भागिवात किल कांडांत्र हे। छेन इत्न धक़ त्र इद मड़ा इग्न, धवर खे मजाश (ब्रव्हाल क्यापाइन व्यापाधाश मजाशाजिब আসন পরিগ্রহ করিয়াছিলেন। কিন্তু তিনি যেরপে वर्क्तगांनाधिशिकि महाता जित्र थागछ छे कि नकल जाएश-राक करत्रन, তাহাতে धे मजा क्षेत्रज्ञात्व व र्ष्माना-ধিপতির সভাপতিত্বে আহত হইয়াছিল বিবেচনা কর। या हेट भारत। ज्ञताश्यमि हे छियान नीता नवामन लरेग्नारे रहेग्नाह खनि जि भारे, ज्यां भि गंज गनिवादात्र मङ। (मज़े शिल ना विलिए इरेप। मङ। एक श्राह्म -প্রস্তাবে সমস্ত সাজাজোরই অভিমতি প্রকাশিত হইয়া-ছিল। বস্তুতঃ বর্ন্ধানাধিপতি মহারাজের সভাপতি-পারে, সন্দেহ নাই। ছঃখের বিষয়, তিনি প্রায়ই এরাপ कार्या (याश (मन ना। किन्छ (वाध इहेट एह, यन এड দিনের পার তিনি ভাঁহার সেই চিরঔদাদীন্ত পরিহার-পূর্বক স্বজাতীয় জনসাধারণের নেতা-স্বরূপ হইয়া প্রকা-

রেবরেও ক্রন্ধমোহন বন্দ্যোপাধ্যায় মহাশয় বন্ধমানাধিপতির প্রতিনিধিস্করপ হইয়া সভাপতির বন্ধৃতা
সমাপন করিলে আরও যে যে ভদ্রলোক অপ্রতিবিশ্রুক
কারণ নিবন্ধন সভায় উপস্থিত হইলে পারেন ল
তাহাদিগের পত্রাদি পঠিত হইল। পরে অভিনদ্দ
সহয়ে কয়েকটা অভিমতি স্থির হইল, এবং স্থবিশ্যাতনামা বার ভেরবচন্দ্র বন্দ্যোপাধ্যায়, বারু অনুপর্টাদ
মিত্র এবং বারু কালীচরণ বন্দ্যোপাধ্যায় তৎকালোপযোগী বক্তার এবং সভাস্থ লোকের আনন্দপ্রকাশক এক
একটা কমিটি অত্যুৎক্রট বক্তৃতা করিলেন। পরে
অভিনদ্দন প্রস্তুত করিবার জন্য একটা কমিটি নিযুক্ত
করিয়া সভা ভদ্ধ হইল। ইগ্রেয়ান লীগের এই কার্মা
বিলক্ষণ বিচক্ষণতা সহকারে নির্ব্রাহিত হইয়াছে।

প্রতিকা কলিকাতা, বাগবাজার আনন্দ চন্দ্র চাটুর্যোর গলি ২ নং বাটী হইতে প্রতি রহস্পতিবার প্রচন্দ্র নাথ রায় দারা প্রকাশিত হয়।